श्रीअरविन्द कर्मधारा

नवम्बर-दिसम्बर, २०२१ श्रीअरविन्द -150वीं जयंती-वर्ष - वर्ष 52 अंक 6

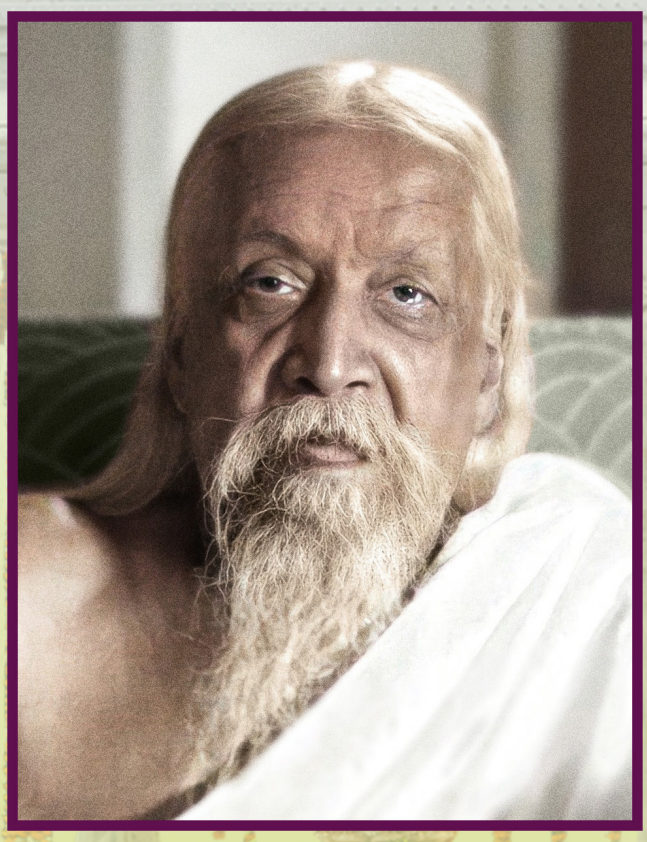

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

नवम्बर-दिसम्बर, 2021 वर्ष 52

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु. तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

5 दिसम्बर (महासमाधि)

योगिवर! समुज्ज्वल योगतनु को
किस हेतु उत्सर्ग किया? उसका मर्म जानता हूँ।
जैसे बीज मृत्तिका को अति क्षुद्र दान देकर
अपने प्राणकण को निःशब्द नीरव
अगणित फलपुष्पों से उपज देकर
अपूर्व आनन्द विश्वमानव को देता है;
वैसे, हे महाप्राण! अतिमानस की
स्वर्णकान्ति अपना शरीर, स्वेच्छा से,
धरणी के तमःपुंज में तुमने तजा है,
प्रदीप्त भास्वर देवकानद को जन्म लेने के लिए,
सर्वप्रसारी अमृतस्रोत बहाने के लिए,
मृण्मयी धरा को चिन्मय धाम बनाने के लिए।
महान यह आत्मोत्सर्ग मृत्यु को जीतकर
निश्चय अभीप्सित सत्ययुग लायेगा ।

मथुरानाथ बन्दोपाध्याय

हिन्दी रूपान्तर : ठाकुर प्रसाद

ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

श्रीअरविन्द कर्मधारा

13 दिसम्बर,1913

हे प्रभु! मुझे अपना प्रकाश दो
मैं किसी भूल भ्रान्ति में न पड़ूँ।
मैं जिस असीम श्रद्धा, भक्ति एवं गहन प्रेम के साथ,
आई हूँ तुम्हारे समीप,
वह सभी को कर सकें सचेतन एवं जागरुक,
होकर ज्योतिर्मय, प्रभावपूर्ण, नि:संशय एवं संक्रामक।
हे नाथ! तुम्हीं मेरा प्रकाश हो शन्ति हो।
मेरा पथ-प्रदर्शन करो, मेरी आँखें खोलो
और मेरी समूची सत्ता को करो प्रकाशमय।
मुझे ले चलो उस पथ से,
जो तुम्हारी ओर जाता है।
तुम्हारी इच्छा से अलग, मेरी कोई इच्छा न रहे शेष,
मेरे सभी कार्य, मेरे समस्त क्रिया-कलाप,
तुम्हारे दिव्य विधान को करें सदैव अभिव्यक्त।
शान्ति, शान्ति, सकल धरा पर शान्ति हो।

-श्रीमाँ

विषय-सूची

क्रं. स.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1.	5 दिसम्बर (महासमाधि)	मथुरानाथ बन्दोपाध्याय, हिन्दी रूपान्तर : ठाकुर प्रसाद	2
2.	प्रार्थना और ध्यान		3
3.	संपादकीय	-अपर्णा	5
4.	9 दिसम्बर (समाधि)	मथुरानाथ बन्दोपाध्याय, हिन्दी रूपान्तर : ठाकुर प्रसाद	6
5.	अतिमानव का मानवीय रूप (अदिति)	रामधारी सिंह दिनकर	7
6.	आरी की कीमत		26
7.	कृतज्ञता		28
8.	जब श्रीमाँ यहाँ पधारीं		30
9.	धरती के भाग्य का निर्णयस्थल-भारत	डॉ.जे.पी.सिंह	31
10.	प्रयास		34
12.	मृत्यु के पश्चात अंतरात्मा की यात्रा		37
13.	श्रीमाँ: महासमाधि के स्वर्ण-कण		39
14.	सर्वोच्च उद्देश्य	श्रीमाँ	45
15.	गतिविधियाँ		46

संपादकीय

जैसा कि सर्वविदित है कि वर्ष 2021 को हम श्री अरविंद जन्म -जयंति-वर्ष के रूप में मना रहे हैं औऱ श्री अरविंद कर्मधारा का प्रत्येक अंक विशेष रूप से प्रभु के चरणों में निवेदित है। यद्यपि विगत लंबे समय से महामारी ने विश्व स्तर पर मानव जीवन को विचलित किया है, किंतु श्रीमाँ और श्रीअरविदं के शब्दों को याद करें तो यह भी विकास-पथ का गतिशील प्रवाह नजर आता है। जो कह रहा हो, रुको! फिर बढ़ो (step back)। कु छ भी करने और कहने के पूर्व रुको, सोचो फिर बढ़ो। नवंबर दिसं बर का यह अंक खास तौर पर अपने अंदर श्री अरविदं की योग साधना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाक्रमो को समेटता है। 17 नवंबर-श्रीमाँ का अपने भौतिक शरीर का परित्याग, 24 नवंबर-श्री अरविदं द्वारा श्री कृ ष्ण चेतना का भौतिक अवतरण अर्थात सिद्धि दिवस, तथा 5 दिसं बर - श्रीअरविदं का महाप्रयाण। 17 नवंबर से 9 दिसं बर तक का यह महत्वपूर्ण समय मानो श्रीअरविदं के पूर्ण योग की साधना की पूरी कहानी सुनाता है। यह हमें इस योग पथ के अनुसरण द्वारा उच्च जीवन की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते हुए जीवन के उच्चतम लक्ष्य से अवगत कराता है। कविवर सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ मानो याद दिला रही हों : ओ भारत जन! तुम्हें बदलना है भू-जीवन, मुक्त तुम्हें करना है,जर्जर रूढ़ि-रीतियोंमें जकड़ा मन। (कविता - ओ भारत जन !) इन पंक्तियो को जन- जीवन में व्यवहार रूप में परिणित करने हेतु हमारे पास और क्या मार्ग है सिवाय इसके कि अपने गुरु श्रीअरविंद और भगवती मां की शरण में जाएँ। आशा का दामन कभी ना छोड़ें, क्योकि तभी उनका आश्वासन प्राप्त होता है। किसी साधक से कहे गए उनके शब्द याद आते हैं - "यह अच्छी बात है कि तुम्हारे अंदर आशा है। आशा ही सुखद भविष्य का निर्माण करती है। तुम्हें कभी भी आशा नहीं छोड़नी चाहिए। कोई भी चीज असाध्य नहीं है और भगवान की शक्ति पर कोई हदबंदी नहीं की जा सकती बल्कि हमारी हिम्मत और सहनशीलता भी इतनी गहरी होनी चाहिए जितनी गहरी हमारी आशा है। आशा की कोई सीमा नहीं होती।" –श्रीमां यह तो हमें मानना ही होगा कि गुरु की महिमा का कोई अंत नहीं होता, बस हमें तो उनके द्वार पर जाना होगा, प्रार्थना के भाव और दृढ विश्वास के साथ। इसी आशा और विश्वास की डोर के सहारे आइए 2021को विदा करते हुए 2022 की ओर श्री अरविंद जयंति वर्ष समरोह के इस उत्साह को और प्रबल करते हुए बढ़ें औऱ अभीप्सा करें कि आने वाला वर्ष हमारे लिए प्रगति की नई, सीढ़ियाँ लेकर आए और समय के प्रभाव से ठहर से गए मानव कदमों को संतुलन के साथ पुन:गति प्रदान करे।हमें स्मरण रखना है कि श्री अरविंद के इस जन्म-जयंती वर्ष समारोह में उनके योग पथ के प्रति सत्य निष्ठा और निरंतर प्रयासरत रहते हुए गतिशील रहना है। कर्मधारा के प्रवाह के साथ गतिशील सभी पाठक बंधुओं को हमारी ओर से हार्दिक स्नेह और नव वर्ष की शुभकामनाएँ -

-अपर्णा

9 दिसम्बर (समाधि)

मथुरानाथ बन्द्योपाध्याय

हिन्दी रूपान्तर : ठाकुर प्रसाद

हे विराट! हे महान् हे महायोगिन!
पृथ्वी के तम:कन्दर में बैठ तुम यहाँ
निभृत एकान्त में दुश्चर तप कर रहे हो।
किसलिए तुम्हारी यह साधना? इस अज्ञातवास में?
मही-मूलाधार मूल में महाकुण्डलिनी शक्ति
छिपी हुयी है सुप्त संगोपन में,
वह शक्ति उद्बोधित करने के लिए तुमने स्पर्श किया है
अत्यन्त भयंकर रसातल के अन्धकार को।
उसी तम: से सम्पूर्ण अकेला लड़ते
वीरवर महानागिनी की ओर दौड़ रहे हो
निद्रा में मग्न होकर क्या उद्देश्य है तुम्हारा?
महा-अग्नि बीज तुम्हारी अमोघ शक्ति
उस महासर्पिणी को ऊपर की ओर जाग्रत करे,
ताकि प्राय: निर्वापित उसकी अग्निशिखा
प्रज्ज्वलित हो, अन्तरिक्ष को भेदकर अतिमानस की
महती महर्शक्ति को दृढ़ आलिंगन करने के लिए
महावह्नि दौड़ जायें।
इस तरह होगा परिणत तुच्छ तमोघन जड़
आनन्द के चिन्मय विग्रह में,
चैतन्य भूमा की अमर प्रतिमा बनेगी
ज्योतिर्मयी क्रियाशीला, साकाररूपिणी।
यही है महान उद्देश्य तुम्हारा।

अतिमानव का मानवीय रूप

-रामधारी सिंह दिनकर

जनसाधारण में से लोग श्रीअरविन्द की ओर उन्मुख हुए हैं उनका भाव यह है कि श्रीअरविंद पहुँचे हुए सन्त थे, उनकी प्रार्थना और भक्ति करने से हमारा कल्याण होगा। और यह भाव ऊँचे-से-ऊँचे शिक्षितों के भीतर भी मुझे दिखायी पड़ा है। देश में जिन्दगी से ऊबा हुआ आदमी, भाग्य के धक्के और ठोकरें खाया हुआ आदमी अक्सर संतों की ओर भागता है, जिनमें से एक सन्त श्री विनोबाजी भी थे। किन्तु जो ऊँचे दरजे के पंडित और विद्वान् हैं, दार्शनिक और चिन्तक हैं, वे श्रीअरविन्द से कुछ भयभीत भी दिखायी देते हैं। क्यों? इसलिए कि श्रीअरविन्द स्फटिक के समान उज्ज्वल तो हैं, किन्तु वैसे ही कठोर भी हैं। उन्हें समझने में दिमाग पर बहुत जोर पड़ता है। उनकी गहराई अथाह है। हम नाव लेकर निकलते तो जरूर हैं, मगर हमारी लग्गी तल तक नहीं पहुँच पाती।

लगभग 24 वर्षों तक श्रीअरविन्द बिलकुल एकान्त में रहे थे। वे जिस कमरे में रहते थे, उस कमरे के साथ एक बरामदा भी है। आरम्भ के बारह वर्षों में वे कमरे से निकल कर बरामदे में भी आते थे, किन्तु बाद के बारह वर्ष उन्होंने कमरे में ही गुजार दिये। तब भी कभी-कभी ऐसा होता था कि उनके दो-चार शिष्यों को उन्हें घेर कर बैठने का, उनके साथ वार्तालाप करने का सुयोग मिल जाता था। जब सन् 1938 के नवंबर महीने में, ठीक दर्शन के दिन, श्रीअरविन्द दुर्घटनाग्रस्त हो गये और उनके पाँव में चोट आ गयी, तब से शिष्यों को उनके पास बैठने के मौके ज्यादा मिलने लगे। उन दिनों श्रीअरविन्द के साथ शिष्यों की जो बातचीत होती थी, उसका रेकार्ड श्रीअम्बालाल पुराणी और श्रीनीरोदवरण रखते जाते थे। उसी रेकार्ड के आधार पर पुराणीजी ने 'सांध्य वार्ता' नाम की पुस्तक तीन जिल्दों में प्रकाशित करवायी और एक पुस्तक नीरोदवरण ने भी निकाली है। अतिमानस की साधना में निमग्न रहने के कारण इन पुस्तकों में भी श्रीअरविन्द का जो रूप खुलता है, वह अतिमानव का ही रूप है। किन्तु, उनकी गोष्ठियों में जब-तब उन विषयों की भी चर्चा छिड़ जाती थी, जो हम लोगों की बातचीत के विषय होते हैं उन पर श्रीअरविन्द की प्रतिक्रिया भी कई बार अतिमानवीय न होकर मानवीय होती थी।

सन्तों के बारे में जनसाधारण की सामान्य जिज्ञासा यह होती है कि काम यानी सेक्स पर उनके विचार क्या हैं। यह प्रश्न श्रीअरविन्द के सामने अनेक बार आया था, पर हर बार उनके उत्तर का सार यही रहा कि मेरे योग में काम-भोग के लिए स्थान नहीं है। किन्तु विभिन्न प्रसंगों में उत्तर देते हुए जोर उन्होंने समस्या के विभिन्न पक्षों पर दिया था।

एक बार किसी साधक ने उनसे पूछा था, "परस्त्री-गमन के बारे में आपका क्या विचार है?" श्रीअरविन्द ने कहा, "क्यों, यह तो स्पष्ट है कि वह अपनी पत्नी के साथ गमन करने से भी ज्यादा खराब है।"

"किन्तु एक साधक ने जब श्रीअरविन्द को लिखा कि "नारी का आकर्षण मुझसे रोके नहीं बनता," श्रीअरविन्द के मुँह से निकला, "उसके लिए यह समझना भूल है कि नारी का आकर्षण कोई चीज है। वह तो बिल्कुल स्वाभाविक है। मानसिक विकृति के कारण ही वह उस आकर्षण से घबरा रहा है। इतने पर भी वह चाहता है कि उस पर अवरोहण हो। अगर अवरोहण हुआ, तब तो वह टूट जायेगा।"

एक दिन एक साधक ने पूछा, "इस योग में नर और नारी के बीच क्या सम्बन्ध है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "यह योग वैराग्य का योग नहीं है, इसमें जीवन या संसार का त्याग बाहर से करने का कोई महत्व नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि निम्न शक्तियों को निम्न धरातल पर ही खेलने की छूट दे दी जाये। यह योग नीचे के धरातल से ऊपर दिव्य भाव तक उठने का योग है। काम और क्रोध की जो प्राणिक क्रीड़ा है, वह असल में मनुष्य के भीतर छिपे पशु का खेल है। भीतर जो पशु मानव छिपा है, उसे जीते बिना तुम दिव्य प्रकृति तक जा कैसे सकते हो?"

इस प्रसंग में श्रीअरविन्द ने और भी कितनी ही सूक्ष्म बातें कहीं और तब वे बोले, इस योग में नर और नारी के बीच जो आदर्श संबंध है, उसे तुम अभी नहीं समझ सकोगे। तुम्हें उसे समझने को उसके योग्य बनना होगा। जिसे सामान्यतः लोग प्रेम कहते हैं, वह बिल्कुल सतही भावना है और वह प्राणिक उद्वेग से संबद्ध है। प्रेम का असली रस शान्त रस है, वह उद्वेगविहीन होता है।

एक साधक को श्रीअरविन्द ने यह भी उपदेश दिया कि "अपनी पत्नी के साथ तुम्हें उसी भाव से रहना चाहिए, जिस भाव से तुम उस मित्र के साथ रहते हो, जिसका जीवनोद्देश्य वही है जो तुम्हारा जीवनोद्देश्य है। मैत्री के सिवा और कोई संबंध पत्नी के साथ भी उचित नहीं है। और कहीं तुम से रहा नहीं जाय, तो तुम्हें अलग रहना चाहिए और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।"

एक साधिका ने श्रीअरविन्द को लिखा कि "मेरा पति काम-भोग छोड़ने को तैयार नहीं है। वह शास्त्रों का उद्धरण दे कर कहता है कि पति-पत्नी के बीच यह कर्म अधर्म नहीं माना जा सकता। अगर कापोभोग वर्जित मान लिया जाय, तो फिर पति-पत्नी के बीच संबंध ही क्या रह जाता है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "उसे लिख दो कि नर और नारी के बीच जो सच्चा संबंध है, उसे वे दोनों अभी नहीं समझ सकेंगे। इस रहस्य को समझने के लिए उन्हें साधना के मार्ग पर अभी बहुत आगे बढ़ना होगा। केवल बुद्धि से इस रहस्य को समझने की कोशिश बेकार है।"

एक साधिका ने लिखा कि "जब से मैंने योग का आरम्भ किया है, मेरा पति मुझ से रुष्ट रहने लगा है। जब मैं इनकार करती हूँ, वह इसे अपना अपमान समझते है।

श्रीअरविन्द ने कहा, "इस साधिका को चाहिए कि अपने पति के साथ के संबंध को वह न स्वीकार करे, न अस्वीकार करे। वह अपने योग के संकल्प पर दृढ़ रहे, बाकी जो घटनाएँ घटती हैं, उन्हें घटित होने दे। नर-नारी के बीच जो वास्तविक संबंध है, वह आप-से-आप प्रकट हो जायेगा।"

एक दिन गोष्ठी में पोशाक की बात निकल पड़ी। किसी शिष्य ने कहा, "निष्ठा कहती है साड़ी बड़ी ही खूबसूरत पोशाक है। और भारतीय नारियों की रंग-चेतना कितनी तीव्र है।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "वह ठीक कहती है। मुझे आशा है कि हमारी देवियाँ पश्चिम के प्रभाव में आकर कर साड़ी का त्याग नहीं करेंगी।"

किसी ने टोका, "साड़ी बड़ी खूबसूरत पोशाक है, यह तो ठीक है, मगर काम असुविधाजनक हो जाती है।"

श्रीअरविन्द बोले, "क्यों? रोमवालों ने तो टोगा पहनकर विश्व पर विजय प्राप्त की थी। और हमारी भारतीय देवियाँ भी तो साड़ी पहनकर कम काम नहीं करती हैं। आदमी जब उपयोगिता के चक्कर में पड़ता है, तभी सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। उपयोगिता को सर्वप्रमुख मानना आधुनिक प्रवृत्ति है। आधुनिकतावादी लोग हर चीज को उपयोगिता की नजर से देखते हैं, मानो खूबसूरती कोई चीज ही नहीं हो।"

एक शिष्य ने कहा, "मगर सौन्दर्य और उपयोगिता को मिला कर भी तो चल सकते हैं?"

श्रीअरविन्द बोले, "लेकिन मिलाकर चलने पर भी जीत आजकल उपयोगिता की ही होगी।"

नलिनीकान्त ने कहा, "सो चाहे जो हो, मगर यूरोपीय मर्दों की पोशाक चुस्त होती है, उससे काम करने में सहूलियत और फुर्ती मिलती है। लेकिन हिन्दुस्तानी धोती केवल आलस्य और आरामतलबी बढ़ावा देती है।"

अरविन्द ने कहा, "लेकिन यह उपयोगिता क्या यूरोपीय पोशाक को दुनिया में सबसे बदसूरत पोशाक होने से बचा सकी है? मैंने बहुत-से लोगों को देखा है, जो धोती पहनते हैं, लेकिन बड़े ही कर्मठ और फुर्तीवाले हैं। यूरोप के लोग अब तो फकत जाँघिया और अधबाँही कमीज पहनने लगे हैं। ख्याल है, यह सबसे उपयोगी पोशाक है।"

पुराणीजी ने कहा, "अब तो हिन्दुस्तानी औरतें भी यूरोपीय लिबास पहनने लगी हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा "भारत की देवियाँ यूरोप की पोशाक पहनें, यह तो भयानक बात है।"

एक दिन किसी ने कहा, "इस देश में साधुओं से विभूति माँगने का रिवाज है। लोग हमारे यहाँ भी विभूति (भस्म) के लिए आते हैं।"

श्रीअरविन्द बोले, "मगर मैंने तो सिगरेट पीना छोड़ दिया। सिगरेट पीता रहता, तो थोड़ी-सी राख दे सकता था।"

एक दिन बात होमियोपैथी पर निकल पड़ी। श्रीअरविन्द ने कहा, "होमियोपैथी योग के अधिक समीप है। एलोपैथी में यांत्रिकता अधिक है। वह मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व को नहीं देखती, स्थूल रूप से रोग का निदान करती है। किन्तु होमियोपैथी मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व पर विचार करती है। इसीलिए उसका प्रभाव सूक्ष्म और तीव्रगामी होता है।

एक बार पुराणीजी ने कहा, "धन्वन्तरि के विषय में यह कहा जाता है कि वे जिस पौधे के पास खड़े होते थे, वह पौधा उन्हें बता देता था कि वह किस रोग की औषधि है।"

श्रीअरविन्द बोले, "इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है, क्योंकि आखिर वह देवताओं के वैद्य थे। आयुर्वेद औषधि-विज्ञान की सबसे पुरानी पद्धति है। यह विज्ञान भारत से पहले यूनान गया था और वहाँ से उसे अरब वालों ने लिया। ज्योतिष भी भारत से ही अरब गया था।"

नलिनीकान्त ने कहा, "कलकत्ते में अब आयुर्वेद के स्कूल खुल रहे हैं। यह अच्छा होगा, क्योंकि इन स्कूलों में शरीर-शास्त्र और शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में पूरब और पश्चिम के बीच समन्वय हो सकेगा।" यह सुनकर श्रीअरविन्द बहुत प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा, "यह क्यों? शरीर-रचना और शल्य- चिकित्सा की बातें तो भारत को मालूम थीं। शल्य-चिकित्सा के भारत में बहुत-से औजार थे। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद-जैसी प्राचीन विद्या के लिए आधुनिक ढंग के कॉलेज और स्कूल अनुकूल नहीं दिखते। स्कूलों और कालेजों में जो कुछ सिखाया जाता है, वह मानसिक होता है, बौद्धिक होता है। लेकिन आयुर्वेद की प्राचीन पद्धति अन्तर्बोधात्मक थी, इनदुइटिव थी। इसीलिए उसके स्कूल नहीं थे, वह गुरु से शिष्य को प्राप्त होती थी। क्या योग का कोई स्कूल हो सकता है? वही बात तुम आयुर्वेद के विषय में भी समझो। योग के लिए भी स्कूल खोलना, इसे मैं अमरीकी पद्धति समझता हूँ।"

अमरीका के बारे में श्रीअरविन्द ने किसी दिन यह भी कहा था कि "गहरी चीजों की ओर अमरीकी लोग आसानी से नहीं जाते। मेरे बारे में अमरीका में एक लेख छपा था, जो बड़ा ही छिछला था। लेकिन निष्ठा (मिस विलसन) कहती हैं कि, मूल रूप में तो, वह लेख गम्भीर था, किन्तु गंभीर लेख अमरीकी पाठक नहीं पढ़ेंगे, यह सोचकर लेखक ने उसे पीछे छिछला बना दिया। अमरीकी जनता नवीनता चाहती है, सनसनीखेज चीजें चाहती है।"

श्रीअरविन्द ने उस दिन यह कहानी भी कही कि "अमरीका से एक पत्र आया है, जिसमें लिखने वाले ने लिखा है, आप योग हैं (योगी नहीं) मैं भी योग हूँ। मैं गहरी समाधि में जा सकता हूँ और घुड़दौड़ तथा स्पोर्ट के बारे में भविष्यवाणीयाँ कर सकता हूँ। आप अमरीका आइये और मेरे साथ बराबर के भागीदार बन जाइये। अगर रुपये लेना आपको मंजूर नहीं हो, तो उन्हें आप गरीबों में बाँट दीजिएगा।"

एक दिन यूनान की चर्चा चल निकली और किसी ने कहा कि पिछले 2000 वर्षों में यूरोपीय चिन्तन केवल प्लेटो के इर्द-गिर्द घूमता रहा है।

श्रीअरविन्द ने कहा, "तुम ठीक कहते हो। रोमन लोग लड़ सकते थे, कानून बना सकते थे, राज्यों को समेट कर एक साथ रख सकते थे, किन्तु सोचने का काम उन्होंने यूनानियों पर छोड़ दिया था। रोमन चिंतक सिसरो, सेनेका, होरेस आदि ने जो दर्शन तैयार किया, वह सब-का-सब यूनान से लिया गया था।"

किसी शिष्य ने टिप्पणी की, "और यूनान ने कलाकार कितने अधिक उत्पन्न किये और वे कितनी उच्च कोटि के थे!"

श्रीअरविन्द ने कहा, "यूनानियों में सौन्दर्य-बोध की भावना प्रबल थी। आधुनिक यूरोप ने अगर यूनान की किसी एक चीज को अपने भीतर जज्ब नहीं किया, तो वह यही सौन्दर्य-बोध की भावना है। तुम यह नहीं कह सकते कि यूरोपीय संस्कृति में सौन्दर्य भी है। यही बात भारत के विषय में भी कही जा सकती है। भारत में भी सौन्दर्य-बोध की भावना उच्च कोटि की थी, किन्तु हमने उसे खो दिया और अब यूरोपीय संस्कृति के प्रभाव में आकर हम उसे अधिकाधिक खोते जा रहे हैं। यूरोप का मानसिक ह्रास इतने से ही जाना जा सकता है कि वहाँ अब ऐसे लोग उत्पन्न हो गये हैं, जो हिटलर को स्वीकार करते हैं। आज से 50 वर्ष पूर्व कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि हिटलर-जैसा आदमी उत्पन्न होगा लोग उसे कबूल भी करेंगे।"

एक दिन डिक्टेटर पर बात चल निकली। किसी ने कहा, अलडूस हक्स्ले का कहना है कि नेपोलियन पर जितनी किताबें लिखी गयी हैं, उतनी और किसी आदमी पर नहीं लिखी गयी। आदमी जब तक सीज़र और नेपोलियन की बड़ाई करता रहेगा, तब तक मानव-समाज में सीज़र, नेपोलियन और हिटलर पैदा होते रहेंगे।

श्रीअरविन्द ने कहा, "हक्स्ले शायद यह समझते हैं कि सीजर और नेपोलियन दुनिया के पहले डिक्टेटर थे। सच्ची बात यह है कि तानाशाही उतनी ही पुरानी है जितना पुराना यह संसार है। जब-जब समाज में अव्यवस्था फैली है, अशान्ति फैली है, तब-तब उसके सुधार और दमन के लिए तानाशाह उत्पन्न हुए हैं। सीज़र और नेपोलियन की निन्दा करने के मानी ये हैं कि हम पुरुष की शक्ति, सामर्थ्य और सफलता की निन्दा करते हैं। हिटलर अवश्य निन्दनीय है, लेकिन कमाल पाशा को हम क्या कहेंगे? पिल्सुदस्की को क्या कहेंगे? स्टालिन और बालकन के राजाओं को क्या कहेंगे? और गाँधी भी तो एक तरह के डिक्टेटर ही हैं।"

फिर यह बात चली कि हक्स्ले ने युद्ध का विरोध किया है।

श्रीअरविन्द ने कहा, "युद्ध के विरोध में भला क्या आपत्ति हो सकती है? सवाल यह है कि युद्ध रोका कैसे जाय? जब दुश्मन लड़ने पर बिल्कुल आमादा है, तब युद्ध को तुम रोक कैसे सकते हो? युद्ध के रोकने का उपाय यह है कि तुम दुश्मन से अधिक बलवान बन जाओ या फिर अन्य राष्ट्रों से दोस्ती करके अधिक बलवान बनो या फिर गाँधीजी के अनुसार शत्रु का हृदय-परिवर्तन करो या सत्याग्रह करो।"

तब प्रश्न यह उठा कि हक्स्ले ने कहा है कि राज्य संसार में उन लोगों का चलना चाहिए, जो अनासक्त और निःस्वार्थ भाव से प्रजा की सेवा कर सकें।

श्रीअरविन्द ने कहा, "निस्सन्देह, यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन अनासक्त लोग तुम्हें मिलेंगे कहाँ? और मिल भी जाएँ, तो उनके नेतृत्व को आसक्त लोग स्वीकार करेंगे क्या? अनासक्त शासक अगर अपने निर्णयों को आसक्त लोगों से स्वीकृत कराना चाहें, तो वे लोग उन निर्णयों को स्वीकार करेंगे? स्वामी विवेकानन्द ने मनुष्य के स्वभाव को कुत्ते की पूँछ कहा था। उसे जितनी बार सीधी करो, उतनी ही बार वह टेढ़ी हो जायगी। यही कारण था कि संवेदनशील लोग समाज से भाग कर एकान्त में चले जाते थे। उनका विचार होता था कि चूँकि मानव-स्वभाव बदला नहीं जा सकता, इसलिए इस पचड़े को ही छोड़ दो। रूसी क्रान्ति के सामने भी यह मसला आया था। किन्तु लेनिन के साथ पन्द्रह लाख क्रान्तिकारी मर्द थे, जो समझौता करने को तैयार नहीं थे। इसी से रूस में क्रान्तिकारियों को सफलता प्राप्त हुई।

किसी ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि लालसाओं और उच्च अभिलाषाओं से छुटकारा मनुष्य को तभी मिल सकता है, जब भगवान् उस पर कृपा करें।

श्रीअरविन्द बोले, "यह बात ठीक है। लालसा और उच्च अभिलाषा दूर-दूर तक मनुष्य का पीछा करती है। जब बड़ौडा में मुझे निर्वाण की अनुभूति हुई थी, मुझे लगने लगा था कि लालसा और अभिलाषा मुझ में नहीं है। किन्तु कलकत्ता पहुँचने पर मैंने अन्तर्ध्वनि सुनी, जिससे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। असल में यह वैसा ही है, जैसे कांग्रेस के दो दल कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए लड़ते हैं और प्रत्येक दल यही समझता है कि वह सेवा के लिए लड़ रहा है, सिद्धान्त के लिए लड़ रहा है।"

एक दिन अनैतिकता की बात चली। किसी शिष्य ने कहा, बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो चरित्र में ढीले हैं, किन्तु सफलता उन्हें खूब मिलती है और राजनीति में वे महान् समझे जाते हैं।

श्रीअरविन्द ने कहा, "सफलता और महत्ता का चरित्र के साथ क्या सम्बन्ध है? संसार के अधिकांश महापुरुष दुश्चरित्र हुए हैं। चरित्र की शिथिलता का कारण यह है कि उस व्यक्ति का प्राणिक तत्त्व (वाइटल) बहुत बलवान है। प्राणिक तत्त्व की यही प्रबलता उसकी सफलता का कारण होती है। प्राणिक आवेग को बेलगाम छोड़ देना ही दुश्चरित्रता है। देखना यह है कि यह आवेग बल के स्तर पर उठता है,

या दुर्बलता के स्तर से। अपने प्राणिक आवेगों का दमन असुर भी करते हैं, जिससे आगे चलकर वे भी व्यापक आनन्द का भोग कर सकें। जो केवल दुर्बलता के कारण या समाज के भय से अपने आवेगों को भोग की ओर जाने से रोकते हैं, उन्हें मैं पवित्र नहीं कहूँगा। साधारण नैतिकता यही है कि हम समाज के नियमों का पालन करें। जब गाँधी जी ने अपनी गर्भवती स्त्री के साथ समागम किया था, तब उसमें कोई अनैतिक बात नहीं थी, लेकिन गाँधीजी ने उसे पाप मान लिया। ज्यादा सन्त ऐसे ही हुए हैं, जो अपने जीवन के आरम्भ में पापी रहे थे, जैसे विल्वमंगल पापी थे।

शिष्य ने पूछा, "क्या कुछ संत इसके अपवाद नहीं हैं?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "नहीं। कारण यह है कि वे अपने पाप को स्वीकार (कनफेस) नहीं करते। सी. आर. दास चरित्रवान नहीं थे, लेकिन कौन कह सकता है कि वे महान् नहीं थे?"

एक बार किसी शिष्य ने कहा, "शंकराचार्य तो अवश्य ही ब्रह्म में लीन हुए होंगे।"

श्रीअरविन्द बोले, "अच्छा हो कि यह सवाल तुम स्वयं ब्रह्म से ही पूछ लो। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। यह बड़ा ही पेचीदा सवाल है। मेरा तो अनुमान यह है कि ब्रह्म ने शंकर से कहा होग तुम इतने तार्किक हो कि तुम मुझ में लीन नहीं हो सकते।"

सेक्स की चर्चा एक दिन और निकल पड़ी। एक साधक ने कहा, "आपके योग में काम का वर्जन है, लेकिन तंत्र-मार्ग में, खास कर वाम मार्ग में, काम-शक्ति का उपयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए किया जाता है।"

श्रीअरविन्द ने पूछा, "कैसे?"

शिष्य ने कहा, "वही तो हम जानना चाहते हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "अगर तुम से न रहा जाय, तो मछली तुम खा सकते हो, पीना चाहो, तो शराब भी पी सकते हो। लेकिन काम-कृत्य का उपयोग तुम आध्यत्मिक जीवन के लिए कैसे कर सकते हो? अपने आप में काम-कृत्य उतना बुरा नहीं है, जितना नीतिकार उसे बताते हैं। यह शरीर का स्वाभाविक आन्दोलन है और उसका कोई लक्ष्य है। अपने आप में वह न तो अच्छा है, न बुरा है। लेकिन योग की दृष्टि से काम-शक्ति संसार में सब से बड़ी शक्ति है। अगर उचित ढंग से उसका उपयोग किया जाय, तो वह तुम्हारे अस्तित्व को सँवारती है, उसे जवान बनाती है। लेकिन अगर उसका उपयोग मामूली ढंग से किया जाय, तब वह दो कारणों से बहुत बड़ी बाधा बन जाती है। पहला कारण यह है कि काम-कृत्य से प्राणिक शक्ति का हास होता है, काम-कृत्य तुम्हें मृत्यु की ओर ले जाता है, यद्यपि उससे नया जीवन भी जन्म लेता है। नये जीवन का उत्पन्न होना, यही काम-कृत्य की क्षति-पूर्ति है। काम-कृत्य मृत्यु की ओर यात्रा है, यह इस बात से भी ह्रास सिद्ध होता है कि संभोग के पश्चात् आदमी को क्लान्ति की अनुभूति होती है, किसी-किसी को उससे घृणा भी होने लगती है।"

शिष्य ने कहा, "मगर आँकड़े तो इसी बात के अधिक हैं कि अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित लोग ही ज्यादा जीते हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "यह ठीक-ठीक सही नहीं है। कोई दीर्घजीवी यह कह सकता है कि वह सिगरेट नहीं पीता है, इसीलिए वह सौ साल तक जी सका है। मगर कोई यह भी कह सकता है कि सिगरेट पीने से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि सिगरेट पीता हुआ मैं शतायु हुआ हूँ। कामकृत्य के साथ जो उत्तेजता चढ़ती है, वह मनुष्य की साइकिक संभावनाओं को नष्ट कर देती है और चेतना के उच्च बिन्दु से उतरकर मनुष्य नीचे आ जाता है।"

शिष्य ने पूछा, 'काम-कृत्य में जो नीचे ले जाने की प्रवृत्ति है, उसमें विवाह और कानून की सहमति से कोई फर्क पड़ता है या नहीं?

श्रीअरविन्द ने कहा, "बिलकुल नहीं। जो भी नैतिक नियम हैं, समाज की व्यवस्था के लिए हैं, जन्म लेने वाले बच्चों के कल्याणय के लिए हैं। जहाँ तक योग का सम्बन्ध है, अपनी पत्नी के साथ संभोग उतना ही बुरा है, जितना परायी स्त्री के साथ। आध्यात्मिक ध्येय के लिए काम का उपयोग केवल वे लोग कर सकते हैं, जो मानवीय धरातल से ऊपर उठ गये हैं, जिनके भीतर आध्यात्मिक और प्राणिक, दोनों ही शक्तियाँ विद्यमान हैं।"

इस पर शिष्य ने घबराकर कहा, "यदि काम-कृत्य का नतीजा इतना खराब है, तब तो साधना में उससे सहयोग लेने की बात सोचनी भी नहीं चाहिए। तब तो हमारा सुरक्षित मार्ग पर ही रहना ठीक है।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "इस सवाल का जवाब देना बड़ा ही खतरनाक है। इस सवाल का जवाब मैं तब दूँगा, जब तुम मानवीय धरातल से ऊपर उठ जाओगे।"

शिष्य ने पूछा, "जब हम मानवीय चेतना से ऊपर उठ जाते हैं, तब काम-कृत्य से होने वाले ह्रास का क्या होता है? वह रोका कैसे जाता है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "उच्च शक्तियाँ चीजों को अपने ढंग से सँभालती हैं और हानिकारक प्रभावों को वे रोक देती हैं। उस समय कामोपभोग का तरीका वही नहीं होता, जो मानवीय धरातल पर देखा जाता है। आध्यात्मिक स्तर पर उसका रूप ही परिवर्तित हो जाता है।"

एक दिन चर्चा इस बात की चली कि प्रत्येक भारतवासी की औसत आय क्या है। एक शिष्य ने कहा, "यही कोई तीस रुपये साल।" दूसरे शिष्य ने कहा, "यानी ढाई रुपये प्रति मास।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "तब तो न्यू इंडिया ने अच्छा सुझाव दिया है। उसका प्रस्ताव यह है कि प्रत्येक मंत्री को उतना ही वेतन मिलना चाहिए, जितनी भारतवासियों की औसत आय है। जैसे-जैसे जनता की औसत आय में वृद्धि होगी, वैसे ही वैसे मंत्री का वेतन और भी बढ़ेगा।"

सन् 1924 में पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी की ओर से कोई पत्र निकाला था और भी अरविन्द से उन्होंने एक लेख की याचना की थी।

श्रीअरविन्द ने शिष्य-मंडली से पूछा, "तुमने मोतीलाल का पत्र पढ़ा है?

शिष्यों ने कहा, "हाँ, पढ़ा है।"

श्रीअरविन्द ने कहा, स्पष्ट ही, "स्वराज पार्टी के लोग महात्मा से बहुत डरे हुए हैं।"

एक शिष्य ने कहा, "मगर उनके भीतर महात्मा जी के लिए प्रेम और आदर भी है।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "सो तो है, मगर प्रेम और आदर से अधिक प्रमुख भय और त्रास ही है।"

सन् 1938 ई. में डॉक्टर भगवानदास जी ने सार्वजनिक मंच से एक सुझाव दिया था कि विधान सभाओं के सदस्य वे ही बनाये जायें, जिनकी उम्र चालीस वर्ष से अधिक हो और जिनका चरित्र ऋषि का चरित्र हो।

यह बात जब श्रीअरविन्द के ध्यान में लायी गयी, उन्होंने कहा, "इससे आशा बँधती हो, ऐसी तो कोई बात नहीं है। ऋषियों का चैम्बर बड़ी ही अजीब कल्पना है। अगर ऋषियों को एक जगह एकत्र करोगे, तो वे आपस में झगड़ने लगेंगे। कहावत ही है, नाना मुनि, नाना मत। प्राचीन काल में ऋषि राजाओं का मार्गदर्शन इसलिए कर पाते थे कि ऋषि सारे देश में बिखरे हुए थे, वे एक स्थान पर एकत्र नहीं थे।"

सन् 1938 में ही किसी ने एक दिन कहा, "जर्मन लोग यहूदियों से नाराज हैं, (हिटलर यहूदी जाति को ही मिटा देना चाहता था) क्योंकि प्रथम विश्व-युद्ध में यहूदियों ने जर्मनी के साथ देश-द्रोह किया था।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "बेवकूफी की बात। सच तो यह है कि यहूदियों ने जर्मनी के महान् बनने में पूरा योगदान दिया है। जर्मनी का वाणिज्य बढ़ा और उसकी नौ सेना यहूदियों का निर्माण है। यहूदी बहुत ही कुशल जाति है, इसीलिए बाकी लोग उनसे जलते हैं। सारे संसार की प्रगति में यहूदियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। मैंने यहूदियों के बारे में की गयी एक प्राचीन भविष्यवाणी की बात तुमसे कही थी या नहीं? जब यहूदियों पर भीषण अत्याचार होगा और वे खदेड़ कर जेरूसलेम पहुँचा दिये जायेंगे, तब संसार में फिर से स्वर्णयुग का आरंभ हो जायेगा।"

"इसी तरह अंग्रेज भी स्काच लोगों से जलते हैं, क्योंकि व्यापार के क्षेत्र में स्काट-लैण्डवालों ने अंग्रेजों को पीट दिया है।"

"और बंगाल में क्या देखते हो? पश्चिम बंगाल के लोग पूरब के बंगालियों को "बांगाल" कहते थे। उन्होंने एक कहावत ही गढ़ ली थी-बांगाल मानुस-मानुस नोय, ओ एक जन्तु।"

"एक मुहल्ले के कुत्ते दूसरे मुहल्ले के कुत्ते को बर्दाश्त नहीं कर सकते। 'पंच' नामक अंग्रेजी पत्र में एक मजाक छपा था। 'बिल, यह नया आदमी कौन है?' बिल ने कहा, 'अरे, विदेशी मालूम होता है, मारो!'

पटने के मेहदी इमाम साहब श्रीअरविन्द के बड़े भक्त हैं। व साधक भी हैं और अंग्रेजी में कविताएँ भी लिखते हैं। अंग्रेजी कवि शेली पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी, जो बहुत प्रसिद्ध हुई। श्रीअरविन्द के सामने जब इस पुस्तक का प्रसंग आया, उन्होंने कहा, "मेरा खयाल है, मेहदी इमाम पर सूफियों का प्रभाव है। उसका यह कहना सही मालूम होता है कि आधुनिक युग के आरंभ के पहले कितने ही कवियों की प्रेरणा अन्य लोक से आती थी, क्योंकि अन्य लोक में उनका विश्वास था। फिर भी मेहदी इमाम का यह कहना ठीक नहीं है कि शेली आदि कवियों को कास्मिक एकता की अनुभूति प्राप्त थी। खास कर शेली तो उदात्ती-कृत श्रृंगार का कवि था। वह पहली दृष्टि में प्रत्येक नारी को देवी समझ लेता था और उसके प्रेम में उद्विग्न हो उठता था। लेकिन उसका मोह-भंग भी तुरन्त हो जाता था। और उस नारी को राक्षसी समझ कर वह उससे भागने लगता था।"

एक बार श्री सुभाष बोस ने श्री दिलीप कुमार राय को एक पत्र लिखा था, जो चन्दरनगर के 'प्रवर्तक' नामक पत्र में छपा। इस पत्र में सुभाष बाबू ने लिखा था कि मेरे जानते श्रीअरविन्द विवेकानन्द से अधिक गंभीर हैं। वे बहुत बड़े ध्यानी भी हैं। लेकिन मेरा खयाल है, कर्म के क्षेत्र से बहुत दिनों तक दूर रहने के कारण उनकी दृष्टि एकांगी हो गयी है। ऐसा व्यक्ति अपने आपको अतिमानव की कोटि तक भले उठा ले, लेकिन जनसाधारण के लिए मैं सेवा और कर्म के मार्ग को ही श्रेष्ठ समझता हूँ।

पत्र सुन लेने के बाद श्रीअरविन्द ने कहा, "मुझे खुशी है कि चिट्ठी ज्यादा लंबी नहीं है।"

एक बार रूस के बारे में पूछे जाने पर श्रीअरविन्द ने कहा, "रूस में जो प्रयोग किया गया है, उसके न किये जाने पर मानवता की अनुभूति अधूरी रहती। रूस ने एक नया ढाँचा (फार्म) तैयार कर लिया है। देखना यह है कि उसके भीतर से रूस वाले क्या कर पाते हैं।"

एक अन्य अवसर पर रूस के बारे में उन्होंने कहा, "अपने अर्थ में साम्यवादी तो मैं भी हूँ, किन्तु रूस में जो कुछ हो रहा है, वह मुझे पसन्द नहीं है।"

एक दिन श्रीअरविन्द शिष्यों को यह समझा रहे थे कि जब दो व्यक्तियों में गहरी दोस्ती होती है तब उसका कारण यह होता है कि दोनों को एक-दूसरे की प्राणिक शक्ति की आवश्यकता है। यही नियम नर और नारी के सम्बन्ध का भी कारण होता है। जब नारी को किसी नर की आवश्यकता होती है, तब इसका अर्थ यह होता है कि उसे किसी दूसरे की प्राणिक शक्ति की आवश्यकता है। नर और नारी जब एक-दूसरे के पीछे भागते चलते हैं, तब खेल इसी आकर्षण का चलता है, प्राणिक शक्ति के इसी आदान-प्रदान का चलता है। नर और नारी आपस में झगड़ते भी हैं, किन्तु झगड़ का भी वे साथ रहना नहीं छोड़ते, क्योंकि एक-दूसरे की प्राणिक शक्ति की यही आवश्यकता उन्हें बाँधे हुए है।

एक शिष्य ने पूछा, "यदि एक ने दूसरे की प्राणिक शक्ति अधिक खींच ली, तो क्या होगा?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "यदि कोई देता कम, खींचता ज्यादा है, तो इसका परिणाम दूसरे के लिए बुरा होगा। हिन्दू ज्योतिष में एक योग राक्षसयोग है। एक पति की अनेक पत्नियाँ जब मर जाती हैं, तब यही कहा जायेगा कि उसने पत्नियों का पालन नहीं, भक्षण किया है।"

एक दिन फासिज्म और कम्युनिज्म पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, "सरकारी नियंत्रण में मेरा विश्वास नहीं है, क्योंकि मैं थोड़ी आजादी चाहता हूँ, सोचने की आजादी, रास्ता खोजने की आजादी, गलती करने की आजादी और फिर से सही रास्ते पर आने की आजादी। प्रकृति ने जब मनुष्य को बनाया था, तब वह जानती थी कि इसके भीतर गलती करने की भी संभावनाएँ हैं। खतरा उठाने की आजादी नहीं रही, गलती करने की आजादी नहीं रही, तो मनुष्य की प्रगति रुक जायेगी। आजादी नहीं रही तो मनुष्य की चेतना का भी विकास नहीं होगा।

हम जिस सभ्यता में जी रहे हैं, वह निखालिस वरदान नहीं शाप भी है। जरा देखो कि यूरोप में क्या हो रहा है। नाजी जर्मनी में चीजें किस हालत में हैं? व्यक्ति के लिए सिर उठाने की वहाँ गुंजाइश ही नहीं है। जर्मनी में या तो हिटलरी तंत्र टूटेगा या जनता का सर्वनाश हो जायेगा। जो हाल नात्सीवाद का है, वही हाल फासिस्तवाद और साम्यवाद का भी है। इन पद्धतियों में ब्राह्मणों अर्थात् मनीषियों के लिए कोई स्थान नहीं है।"

"यह आश्चर्य की बात है कि स्वीकृति पाते ही चीजें बर्बाद कैसे होने लगती हैं। डिमोक्रेसी उस समय कहीं अच्छी चीज थी, जब उसका नाम डिमोक्रेसी नहीं पड़ा था। जब नाम आ जाता है, सत्य विदाई ले लेता है। मैं पहले ही जानता था कि जब समाजवाद आयेगा, व्यक्ति की सारी स्वतन्त्रता समाप्त हो जायगी।"

एक शिष्य ने पूछा, "तो फिर रोम्याँ-रोलाँ जैसे लोग रूस के प्रति इतना उत्साह क्यों दिखा रहे हैं?" श्रीअरविन्द ने कहा, "सम्भवतः इसलिए कि वे समाजवादी हैं। लेकिन, उनका मोह अब टूट रहा है। फ्रांस के बहुत-से मजदूर रूस चले गये थे, लेकिन निराश होकर उन्हें वहाँ से लौटना पड़ा। जब प्रजातंत्र आया था, तब भी लोगों को आशा बँधी थी कि अब स्वतन्त्रता का आनन्द छूट कर उठायेंगे। लेकिन वह आशा पूरी नहीं हुई।

शिष्य ने टोका, "लेकिन यह तो हुआ है कि पहले वे सम्राट् की सेवा करते थे, अब वे जनता की सेवा कर रहे हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा यह विचार तुमको कहाँ से मिला? सम्राट का शासन से क्या सरोकार था? देश पर असली राज पूँजीपतियों और धनियों का चलता था। नाम चाहे जो भी दो, लेकिन बातें आज भी वे ही चल रही हैं। नाम चाहे जो भी रखो, लेकिन यह सारी-की-सारी व्यवस्था धोखा है, धोखे का जाल है। राजनीति के यन्त्र से मनुष्यता को बदलना बिलकुल असम्भव है। यह हो ही नहीं सकता।"

जापानियों के बारे में श्रीअरविन्द के बड़े ऊँचे विचार थे। एक बार अपने शिष्यों से उन्होंने कहा था कि "जापानी सही सज्जन और सुशील होते हैं और उनका आचरण बड़ा ही विनम्र होता है। लेकिन वे तुम्हें अपने व्यक्तिगत जीवन के दायरे में नहीं आने देंगे। आत्म-नियन्त्रण की शक्ति उनकी एकता होती है। वे क्रोध में आकर तुम से झगड़ा नहीं करेंगे। लेकिन बात उनकी इज्जत पर आन पड़े, तो वे तुम्हारी जान तक ले सकते हैं और अगर वे तुम्हारी जान न ले सके तो अपनी जान वे तुम्हारे दरवाजे पर गँवा देंगे। अगर किसी अंग्रेज के दरवाजे पर कोई जापानी आत्महत्या कर ले, तो फिर उस ओज का यहाँ रहना ही असंभव हो जायगा।

"जुर्म करने में भी जापानी एक विचित्र प्रकार के मूल्य का निर्वाह करते हैं। अगर घरवाला कहे कि उसे थोड़े रुपयों की जरूरत है, तो लुटेरे कुछ रुपये उसके लिए छोड़ देते हैं। और घर वाले ने कहीं यह कहा कि वह कर्जदार है, और कर्ज चुकाये बिना उसकी इज्जत नहीं बचेगी, तो लुटेरे सारा माल उसे लौटा देंगे।"

"इस पृष्ठभूमि पर जरा उन चोरों और उचक्कों के बारे में सोचो, जो इंग्लैण्ड और अमरीका में भरे हुए हैं।"

"रुसी-जापानी युद्ध में जब रूसियों की हार हो गयी, तब मिकाडो यह सोच कर रोने लगा था कि हाय, रूस के ज़ार की इज्ज़त चली गयी।"

"भूकंप के कारण एक बार जापान में आग लग गयी। जहाँ आग लगी थी, वहाँ कोई पचास हजार आदमी जमा थे। वे सब-के-सब जल रहे थे, लेकिन किसी के मुख से चीख या पुकार नहीं निकल रही थी। वे सब-के-सब समवेत स्वर में बौद्ध मंत्र का पाठ कर रहे थे। जापानी वीर जाति है। उसकी आत्मनियन्त्रण की शक्ति आश्चर्यजनक है।"

"यह दुःख की बात है कि इतनी अच्छी जाति यूरोप की कुरूप सभ्यता के सम्पर्क में पड़ कर खराब हो रही है। अब जापानी भी बनिये हो गये हैं। पैसे के लिए वे अब कुछ भी कर सकते हैं। एक जापानी महिला बहुत दिनों तक अमरीका में रह गयी थी। वह जब जापान लौटी, उसने अपने देश को बहुत बदला हुआ पाया। इस परिवर्तन को वह बर्दाशत नहीं कर सकी और चुपचाप फिर अमरीका लौट गयी।"

जब जापान ने चीन पर चढ़ाई की थी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जापान के खिलाफ एक जोरदार बयान दिया था। रवीन्द्रनाथ के वक्तव्य का खंडन करते हुए जापानी कवि योन नोगूची ने एक दूसरा वक्तव्य दिया था। यह वक्तव्य जब श्रीअरविन्द को दिखाया गया, उन्होंने कहा, "हर विषय के दो पहलू होते हैं। साम्राज्यवाद के खिलाफ इस प्रकार के नारों में मेरा अधिक विश्वास नहीं है। इस प्रकार का जय-अभियान पहले राजनीतिक का स्वाभाविक कर्तव्य समझा जाता था। प्रायः प्रत्येक जाति इस प्रकार का कार्य करती है। और चीन को तुम क्या समझते हो? क्या चीन ने काशगर को इसी तरह ही जीता था? काशगर नाम ही बतलाता है कि चीन को वहाँ जाने का कोई अधिकार नहीं था। अब आदमियों को मारने के तरीके बदल गये हैं। इसके सिवा युद्ध में मुझे और कोई भेद दिखायी नहीं देता। यह एंग्लो-सैक्सन जाति का पाखंड है जो इस तरह की चीख-चिल्लाहट मचाता है। फ्रांस तो कुछ भी नहीं बोलता।"

शिष्य ने कहा, "फ्रांसीसी लोगों का दिमाग जल्दी खराब नहीं होता है, लेकिन जब वह खराब होता है, पूरा ही खराब हो जाता है।"

श्रीअरविन्द बोले, "हाँ, पहले हिन्दुस्तानी के बारे में भी लोग सोचते थे कि वह हाथी के समान पालतू और विनम्र होता है। मगर जब यह हाथी बिगड़ जाता है, तो फिर उसकी ज़िद में आने से बचने में ही खैर है।"

शिष्य ने पूछा, "क्या यूरोपीय सभ्यता में कोई भी अच्छी बात नहीं है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "है क्यों नहीं? सफाई, स्वच्छता, स्वास्थ्य-सेवा, ये सभी अच्छी बातें हैं। किन्तु यूरोप ने मानवता के नैतिक टोन को नीचे कर दिया। उन्नीसवीं सदी की सभ्यता भी इस सभ्यता से श्रेष्ठ थी। पिछले महायुद्ध के बाद यूरोप सँभल नहीं सका। पुराने समय के लोगों के सामने ऊँचे आदर्श थे और वे इन आदर्शों को और भी ऊँचा उठाना चाहते थे। किन्तु पिछले महायुद्ध (प्रथम विश्वयुद्ध) के बाद यूरोप के सभी आदर्श नष्ट हो गये। यूरोप के लोग सनकी हो गये हैं, स्वार्थी हो गये हैं। मेरा खयाल है, इस सब की जड़ में वाणिज्यवाद है।"

प्रजातन्त्र की चर्चा चलने पर श्रीअरविन्द ने कहा, "तुम समझते हो कि प्रजातन्त्र शासन का सबसे अच्छा रूप है? इंग्लैण्ड को छोड़ कर वह कहीं भी कामयाब नहीं हुआ है। फ्रांस में तो उसकी हालत और भी खराब है।"

एक दूसरे दिन उन्होंने कहा, "तुम संसदीय उदारतावाद को अपना रहे हो, मजदूर आन्दोलन को अपना रहे हो, इसलिए कि ये चीजें यूरोप में हैं। किन्तु वहाँ वे वस्तुएँ वास्तविकता पर आधारित हैं, किन्तु भारत में वे नाम भर हैं। सार्वजनिक शिक्षा के पूर्ण हुए बिना संसदीय पद्धति कामयाब नहीं हो सकती।"

एक दिन किसी ने पूछा, "भारत ने बाहर से आने वाली सभी जातियों को पचाकर अपने एकाकार कर लिया, लेकिन वह मुसलमानों को क्यों नहीं पचा सका?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "मानसिक धरातल पर भारत में यह प्रक्रिया भी आरंभ हुई थी, मगर वह आगे नहीं बढ़ सकी। आगे वह तब बढ़ेगी, जब मुस्लिम मानस में सुधार हो, मुसलमान सहिष्णु बनें। जब तक मुसलमानों के भीतर सहिष्णुता नहीं आती, मेरा खयाल है, भारत उन्हें पचा नहीं सकेगा। हिन्दू हर हालत में सहिष्णु होने को तैयार हैं। वह सब को अपने भीतर पचा सकता है, बशर्ते कि लोग उसके केन्द्रीय सत्य को मानने को तैयार हों।"

राष्ट्रीयता की बात चलने पर उन्होंने कहा, "राजनीतिक अर्थ में राष्ट्र की परिकल्पना भारत में थी ही नहीं। हाँ, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अर्थ में राष्ट्र यहाँ भी था। यही हाल बाकी संसार का था। फ्रांस राष्ट्रीय तब बनने लगा, जब जोन आव् आर्क का अविर्भाव हुआ। उसके पूर्व इंग्लैण्ड को फ्रांस अमीरों में ब्रिटिश पक्ष के समर्थक मिल जाते थे।"

बड़े कल-कारखानों के विषय में चर्चा छिड़ने पर श्रीअरविन्द ने कहा, बड़ी मशीनों का आना अनिवार्य है। जब तक उत्पादन बड़े पैमाने पर नहीं किये जायेंगे, भारत से गरीबी दूर नहीं होगी। मशीनों के खिलाफ जो आवाज उठायी जा रही है, उसका मूल कारण यह है कि भारतवासी गरीबी को दुर्गुण नहीं मानते। भारत को संपत्ति चाहिए, संपत्ति के बिना उसकी प्रगति नहीं होगी।"

1923 ई. में मुलतान में जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए थे, उनके बारे में एक बयान मालवीय जी ने दिया था और दूसरा वक्तव्य राजा जी ने। जब ये दोनों वक्तव्य श्रीअरविन्द को दिखाये गये, उन्होंने कहा, "ये लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता को ताबीज बना रहे हैं। सत्य को आँख से ओझल करना ठीक नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह अर्थ तो नहीं है कि हिन्दू, मुसलमानों के अधीन हो जाये? हिन्दू-मुस्लिम समस्या का सबसे अच्छा समाधान यह है कि हिन्दू अपने को संगठित करें। तब हिन्दू-मुस्लिम एकता आप-से-आप हो जायेगी। यह समस्या अत्यन्त कठिन है। हर बार जब समझते हैं कि हमने समस्या का समाधान कर लिया, तब हम फकत समस्या को टाला करते हैं।"

इस्लाम की चर्चा एक दिन और निकली। उस दिन श्रीअरविन्द ने कहा, "उस धर्म के साथ तुम शान्तिपूर्वक कैसे रह सकते हो, जो यह कहता है कि मैं बर्दाशत नहीं करूँगा? मुसलमान का धर्म-परिवर्तन करते जायँ और हिन्दू, मुसलमान को हिन्दू नहीं बना सकें, इस आधार पर कभी एकता हो सकती है? एक ही रास्ता है, जिससे मुसलमान शान्तिमय बनाये जा सकते हैं। वे कट्टरपन और धर्मान्धता को छोड़ दें। अलीगढ़ में उन्हें जो शिक्षा मिलती है, वह काफी नहीं है। उन्हें अधिक उदार शिक्षा दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए टर्की के लोग धर्मोन्मादी नहीं हैं। जब वे लड़ते है, उनका उद्देश्य स्वतन्त्रता के लिए लड़ना होता है, धर्म के लिए नहीं। दुनिया में जितने भी धार्मिक युद्ध लड़े गये हैं, वे या तो क्रिस्तानों के आरंभ किये हुए थे या मुसलमानों के। हाँ, अपने समय में यहूदियों ने भी थोड़ा अत्याचार जरूर किया था।"

एक दिन किसी ने कहा, "गाँधी जी को यह चिंता अधिक नहीं है कि विपक्षी भी अहिंसक बने। वे अपने आपको अहिंसक रख कर सतुष्ट हो जाते हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "यह सत्याग्रही की हिंसा है। अहमादाबाद में जब मिल-मजदूरों ने हड़ताल की थी, तब गाँधी जी ने उपवास किया था। आखिर कार मिल-मालिकों को उनकी बात माननी पड़ी, इसलिए नहीं कि मिल-मालिक अपनी भूल को समझ गये थे, बल्कि इसलिए कि वे गाँधी जी की मृत्यु पाप अपने मत्थे लेना नहीं चाहते थे। लेकिन समझौते के बाद क्या हुआ? मिल-मालिक फिर वही सलूक करने लगे, जो पहले करते थे। यही बात दक्षिण अफ्रीका में भी हुई। गाँधी जी का सत्याग्रह कुछ थोड़ी दूर तक सफल हुआ था, लेकिन जब गाँधी जी भारत लौटे, सरकार का रुख वही हो गया, जो पहले था।"

एक दिन चर्चा इस विषय की निकली कि दयालु और पवित्र शाकाहारी होता है या मांसाहारी?

श्रीअरविन्द ने कहा, "आध्यात्मिक जीवन में भोजन को इतना अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह प्रश्न गौण है कि आदमी आमिष खाता है या नहीं। असली कसौटी यह है कि साधक में समता की दृष्टि है या नहीं। वह है तो फिर मछली या सब्जी से क्या फर्क पड़ता है? दार्शनिक दृष्टि से तो यह बताना भी कठिन है कि मछली में जीवन अधिक है और पौधे में कम है। पौधों में मन तो नहीं है, किन्तु जीवन की चेतना आदमी से कम नहीं है। अब मैं मछली नहीं खाता हूँ, लेकिन इसका महत्त्व क्या है? बिल्ली को तो मछली देता ही हूँ।"

रवीन्द्रनाथ और जगदीशचन्द्र बोस की तुलना करते हुए श्रीअरविन्द ने कहा, "टैगोर का विकास अधिक समृद्धिपूर्ण विकास है। उनका व्यक्तित्व भी बोस के व्यक्तित्व से बड़ा है।"

धन के विषय में बोलते हुए श्रीअरविन्द ने कहा, "गरीबी की प्रशंसा ईसाइयत की देन है। हिन्दू-धर्म दरिद्रता को वरेण्य नहीं मानता था। ब्राह्मण धन के प्रति अनासक्त तो होते थे, किन्तु निर्धनता की पूजा वे भी नहीं करते थे। गाँधी जी का यह उपदेश निरर्थक है कि सत्याग्रही को चाहिए कि वह बच्चों के लिए धन की विरासत नहीं छोड़े।"

एक दिन चर्चा इस विषय की निकाली कि आश्रमवारियों को जो खटमल और मच्छर सताते हैं, उनका क्या किया जाय?

नलिनीकान्त ने कहा, "सुना जाता है कि कट्टर जैन किराये पर आदमी लाकर उसे खटमल वाली खाट पर सुलाते हैं।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "इतिहास में मैंने एक कहानी पढ़ी है। जब मोहम्मद गजनी आया, उसने एक जैन राजा को हरा कर उसे कैद कर लिया और सिंहासन पर उसके भाई को बिठा दिया। अब नये राजा को यह सूझे ही नहीं कि वह कैदी राजा का क्या करे? निदान, उसने सिंहासन के नीचे एक समाधि खुदवायी और कैदी राजा को उसमें गाड़ दिया। इस प्रकार वह कैदी मर तो गया, किन्तु उसे मारने पाप राजा को नहीं लगा

उस दिन श्रीमाँ भी वार्ता के समय मौजूद थीं। उन्होंने कहा, "सच्चा अहिंसक जैन वही हो सकता है, जो योगी हो। मैं जब यहाँ आयी थी, तब योगबल से ही मच्छरों को दूर रखती थी।"

एक साधक ने पूछा, "लेकिन साँप और बिच्छू को मारना उचित है या नहीं?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "क्यों नहीं? आत्म-रक्षा के लिए उन्हें मारना ही चाहिए। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि तुम उन्हें खोज-खोजकर मारो। लेकिन जब तुम्हें यह दिखायी पड़े कि उनसे तुमको या दूसरों को खतरा है, तो निश्चय ही उन्हें मार डालना चाहिए।"

एक बार गाँधी जी के सुपुत्र श्री देवदास गाँधी श्रीअरविन्द से मिलने गये थे। उन्होंने श्रीअरविन्द से पूछा, "अहिंसा के बारे में आपका क्या विचार है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "मान लो, कल अफगान लोग भारत पर चढ़ाई कर दें, तो अहिंसा से तुम उनका मुकाबला कैसे करोगे?"

नलिनी कांत से बात करते हुए श्रीअरविन्द ने कहा, "बंगाल में जो बमबाजी होने लगी, वह मेरी चलायी हुई नहीं थी। मेरा विचार तो एक साथ सारे भारत में सशस्त्र क्रान्ति करने का था। लेकिन नौजवान बिलकुल बचपने की बातें करने लगे। वे मजिस्ट्रेटों को पीटने लगे। वे आतंकवादी हो गये, डकैत हो गये। यह बिलकुल ही मेरा विचार नहीं था। बंगाल बड़ा ही भावनाशील है। वह परिणाम तुरन्त चाहता है। उसमें इतना धैर्य नहीं है कि वह वर्षों तक चुप रहकर तैयारी कर सके। हम भारत की आत्मा को जगाकर गुरिल्ला-पद्धति से युद्ध करना चाहते थे, जैसे आयरलैण्ड के सिनफिन आन्दोलन में था।"

एक दिन किसी ने कहा, "लगता है, भविष्य में महाकाव्य अधिक-से-अधिक आत्मनिष्ठ (सबजेक्टिव) होते जायेंगे।

श्रीअरविन्द ने कहा, "हाँ, मालूम यही होता है। हमेशा से विचार यही रहा है कि महाकाव्य में कोई कहानी भी होनी चाहिए। लेकिन अब लगता है, कथा का कोष समाप्त हो गया। इसके सिवा नए युग की माँग भी आत्मनिष्ठता की ही है और महाकाव्य को भी इस माँग का जवाब देना होगा।"

शिष्य ने कहा, "यह दुःख की बात है कि टैगोर ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा।"

श्रीअरविन्द बोले, "टैगोर? उनके पास महाकाव्य वाला मस्तिका नहीं है। लेकिन कुछ वर्णनात्मक कविताएँ उन्होंने बहुत अच्छी लिखी हैं।"

एक दिन पुराणी जी ने कहा, "यह दुःख की बात है कि भारत की किसी भी नयी भाषा में कोई ऐसी कृति नहीं है, जिसे शुद्ध और सफल महाकाव्य कहा जा सके।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "ऐसा तुम क्यों कहते हो? मधुसूदन (माइकेल मधुसूदन) ने सफल महाकाव्य लिखा है। उस काव्य का प्रवाह बहुत बढ़िया है, उसमें शैली और लोच भी है, किन्तु भीतर का द्रव्य उसका कमजोर है। बंगालियों का दिमाग महाकाव्य लिखने वाला दिमाग नहीं है, इसलिए आश्चर्य होता है कि मधुसूदन ने बंगला में महाकाव्य कैसे लिखा? बंगला में जो रामायण और महाभारत हैं, वे भी बहुत अच्छे नहीं हैं। मेरा खयाल है, मधुसूदन ने होमर और वर्जिल को खूब पढ़ा था। प्रेरणा मधुसूदन को उन्हीं से मिली होगी।"

श्रीअरविन्द ने और भी कहा, "महाकाव्य लिखने वाला मानस बहुत ही ऊँचा विस्तृत और शक्तिशाली होता है। बंगाल का मन नाजुक है, नर्म है। यही कारण हुआ कि फ्रेंच में भी कोई महाकाव्य नहीं लिखा जा सका। फ्रेंच भाषा भी बहुत ही कोमल, व्यवस्थित और प्रांजल है।"

नलिनीकान्त ने पूछा, "इकबाल की कविताएँ आपने देखी हैं? कई लोग उन्हें टैगोर से बड़ा मानते हैं।"

महाकाव्य की बात फिर चली।

श्रीअरविन्द ने कहा, "साधारणतः समझा यह जाता है कि महाकाव्य लिखने वाला कवि सदियों में कभी एक बार आता है। मगर उनकी संख्या कितनी थोड़ी रही है? और विषय की बात सोचो, नेपोलियन का जीवन क्या महाकाव्य का विषय नहीं था? फिर भी उस पर महाकाव्य नहीं लिखा गया। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा अतुलनीय है। उसने कितने महाकवि उत्पन्न किये? असल में संस्कृत भाषा ही महाकाव्य है। वाल्मीकि और व्यास तो अपनी जगह पर हैं ही। कालिदास, भारवि आदि कवियों ने भी महाकाव्य की ऊँचाई प्राप्त कर ली है।"

अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय कवियों की बात चलने पर श्रीअरविन्द ने कहा, "कठिनाई यह है कि ये लोग कभी-कभी लिखते तो सफलता के साथ हैं, किन्तु उनकी रचनाओं को देखकर यह कभी भी भासित नहीं होता कि उनकी कविताओं के भीतर से आदमी बोल रहा है। लगता है, अंग्रेजी साहित्य को पढ़कर वे अंग्रेजी में कविताएँ बना डालते हैं। सरोजिनी नायडू इनमें सबसे अच्छी हैं। उनकी अभिव्यक्तियाँ भी स्वच्छ हैं। लेकिन उनका क्षितिज छोटा है।"

नयी कविता की बात चलने पर उन्होंने कहा, "जिसका सूत्र विक्टोरिया के युग में ही छूट गया, वह इन कविताओं को समझ नहीं सकता है। सुना है, इंग्लैण्ड में आज-कल कविताएँ नहीं पढ़ी जाती हैं। और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मेरा खयाल है, इसकी जवाबदेही नये कवियों पर थोपी जानी चाहिए।"

पुराणी जी ने कहा, "थामसन ने मुझे इलियट को पढ़ने को कहा था। मैंने उसे पढ़ा भी, लेकिन कोई चीज मुझे मिली नहीं, एजरा पौण्ड में भी नहीं। तब मैंने अमल से पूछा कि उसकी राय क्या है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "उसकी राय क्या है?"

पुराणी जी ने कहा, "अमल कहता है कि नाम तो उनका पौण्ड है, मगर कीमत मैं उनकी पेनी भर भी नहीं मानता।"

श्रीअरविन्द ने कहा, "इलियट आधुनिक कविता के प्रवर्तक हैं, गरचे मैंने उन्हें ध्यान से पढ़ा नहीं है। मगर तुम यह जानते हो कि आधुनिक कवि की परिभाषा क्या है? आधुनिक कवि वह है, जिसकी कविता वह आप समझता है या उसके मित्र समझते हैं।"

एक दिन श्रीअरविन्द ने शिष्यों से पूछा, "हिटलर के साथ कर्नल बेक का एक इण्टरव्यू छपा है। क्या तुमने उसे पढ़ा है?"

शिष्यों ने पूछा, "दोनों की क्या बातें हुईं?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "दोनो एक-दूसरे पर खूब चिल्लाये। कहते हैं, हिटलर जब चिल्लाने लगता। उसकी आँखों में शीशे की धमक आ जाती है और जब यह चमक आ जाये, तब उसका अर्थ सर्वनाश होता है। बेक के साथ बात करते समय भी हिटलर चिल्लाने लगा और उसकी आँखें काँच की तरह चमकने लगीं। इस पर बेक दुगुने जोर से चिल्लाने लगा। बेक को उतने जोर से चिल्लाते देखकर हिटलर आश्चर्य के मारे ठंडा हो गया।"

एक दिन एक शिष्य ने कहा, "सुना है, कमाल पाशा ने मिश्र के एक शरीफ आदमी को चपत मार दी, क्योंकि रात्रि-भोज पर वह फेज़ कैप पहनकर आया था।"

श्रीअरविन्द बोले, "और उस पत्रकार की बात क्या तुमने नहीं सुनी है, जिसने सरकार की आलोचना करते हुए लिख दिया था कि टर्की पर शासन कुछ पियक्कड़ों का चल रहा है? कमाल ने उस पत्रकार को एक दिन खाने पर बुलाया। पत्रकार तो इस न्यौते से ही काँपने लगा था। जब वह खाने की मेज पर बैठ गया, कमाल ने उससे कहा, नौजवान, टर्की पर राज पियक्कड़ों का नहीं, एक पियक्कड़ का चल रहा है।

एक दिन श्रीअरविन्द ने कहा, "सुभाष और उनके दल के लोग अभी भी उसी मनोदशा में हैं, जो 1906-7 की मनोदशा है। वे यह समझ नहीं रहे हैं कि परिस्थितियों बदल गयी हैं।"

एक शिष्य ने कहा, "वे सरकार से लड़ना चाहते हैं।"

श्रीअरविन्द बोले, "हर समय ध्येय-प्राप्ति के लिए लड़ना जरूरी नहीं है। गाँधी जी का आदर्शवाद बड़ा है, मगर वे जानते हैं कि जनता कहाँ तक जाने को तैयार है और, अपनी अन्तर्ध्वनि के बावजूद, वे यह भी जानते हैं कि खुद उन्हें कहाँ तक जाना चाहिए।"

बात एक दिन ग्रामोफोन, रेडियो और सिनेमा पर चली। श्रीअरविन्द ने कहा, "ग्रामोफोन तो संगीत का हत्यारा साबित हुआ है। लेकिन दुर्भाग्यवश उन सभी चीजों का यही हाल है, जो जनता का समर्थन चाहती हैं। सिनेमा और नाटक इसीलिए सस्तेपन की ओर जा रहे हैं।"

शिष्य ने पूछा, "तो जो बड़े हैं, वे इसे रोकते क्यों नहीं?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "उन्हें भी समझौता करना पड़ता है, क्योंकि वे ज्यादा श्रोता चाहते हैं और समझौते के प्रयास में हर अच्छी चीज, बुरी चीज से मिश्रित हो जाती है। कला की ऊँची कृतियाँ जन-रुचि को खींचकर ऊपर ले जाना चाहती हैं। लेकिन समझौता करने पर जनता की रुचि ही कला को खींचकर नीचे ले आती है। हर चीज, जो भीड़ को प्रसन्न करके जीना चाहती है, अपनी ऊँचाई को छोड़कर नीचे जरूर आयेगी।"

श्रीअरविन्द का विचार था कि भारत में समाजवाद का भविष्य बहुत बड़ा नहीं है। एक दिन उन्होंने कहा, "यहाँ का किसान समाजवाद का साथ दूर तक नहीं देगा। जब तक तुम जमींदारी के खिलाफ हो, किसान तुम्हारा साथ देगा। लेकिन जमीन जब उसे मिल जायगी, तब समाजवाद की इतिश्री वह वहीं समझ लेगा। समाजवादी पद्धति में राज्य कदम-कदम पर दस्तंदाजी करता है और वह भी उन अमलों के द्वारा जो जनता को लूटते हैं।"

जब श्रीअरविन्द अलीपुर-बम केस के मुकदमे से रिहाई पाकर बाहर आये थे, उन्होंने कलकत्ते के पास उत्तरपाड़ा में एक भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत का भविष्य सर्वहारा (प्रोलेतेरियत) के हाथ है। जब तक वह नहीं जगेगा, संपूर्ण देश का उद्धार नहीं होगा।

एक दिन एक शिष्य ने पूछा, "गाँधी जी के आन्दोलन के बारे में आपका क्या विचार है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "गाँधी जी भारत को स्वतन्त्रता की ओर बहुत दूर तक ले गये हैं। किन्तु उनका आन्दोलन उच्च मध्यम वर्ग तक ही सीमित रह गया है, जबकि हम लोग निम्न मध्यम वर्ग को भी जगाने की कोशिश कर रहे थे।"

एक और दिन गाँधी जी की बात चलने पर उन्होंने कहा, "गाँधीजी ने चरखे को धार्मिक सिद्धान्त बना दिया है और उन लोगों को कांग्रेस के बाहर रख छोड़ा है, जो सूत कातने को तैयार नहीं है। लेकिन उनके अनुयायियों में कितने लोग हैं, जो चरखे में हृदय से विश्वास करते हैं? कुछ आने पैसे के लिए इतनी अधिक शक्ति का अपव्यय करना मुझे तर्कसम्मत नहीं दिखता।"

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के प्रति श्रीअरविन्द के बड़े ही ऊँचे विचार थे। वार्ताक्रम में एक दिन उन्होंने कहा, "जब मैं बंगाल आया, मैंने बंगाल के नेताओं को एकत्र किया और उनसे कहा कि हमें चाहिए कि हम तिलक जी को अपना नेता मानें और नरम दल वाले नेताओं को बाहर फेंककर कांग्रेस पर अपना कब्जा जमा लें। सभी नेताओं ने इस विचार को पसन्द किया और तिलक जी भी हमारा नेतृत्व करने को तैयार हो गये। तिलक जी सचमुच महापुरुष थे। उनमें स्वार्थ की गन्ध तक नहीं थी।"

एक शिष्य ने पूछा, "तिलक जी ने गीता पर जो ग्रंथ लिखा है, उस पर आपका क्या विचार है? क्या वह ग्रंथ ऊपर की प्रेरणा से लिखा गया है?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "मैंने तिलक जी का गीता-रहस्य पढ़ा नहीं है।"

शिष्य ने पूछा, "तो फिर आपने उसकी समीक्षा कैसे लिख डाली?"

श्रीअरविन्द ने कहा, "संभव है, बिना पढ़े ही लिख दी हो।"

इस पर गोष्ठी हँस पड़ी।

तब श्रीअरविन्द ने कहा, "पुस्तक को उलट-पुलटकर मैंने जरूर देखा है। लेकिन मेरा ख्याल है, वह प्रेरणा नहीं, मस्तिष्क की उपज है। तिलक जी की मानसिक शक्ति बड़ी प्रबल थी।"

श्रीअरविन्द ने राजनीति को क्यों छोड़ दिया, इस विषय पर बोलते हुए एक दिन उन्होंने कहा था कि "राजनीति मैंने इसलिए नहीं छोड़ी कि उस क्षेत्र में मैं अब आगे कुछ नहीं कर सकता था। कारण यह था कि ऊपर से मुझे आदेश मिला था और मैं नहीं चाहता था कि योग में कहीं से भी बाधा या विक्षेप पड़े। मैंने राजनीति से अपना से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ लिया, लेकिन, मुझे यह विश्वास हो गया था कि राजनीति में मैंने जिस कार्य का श्री गणेश किया है, वह रुकने वाला नहीं है। उसे आगे बढ़ाने वाले लोग आयेंगे और स्वतन्त्रता मिलकर रहेगी। यह विश्वास हो जाने पर ही मैंने राजनीति से अपने को अलग कर लिया।" सन् 1920 में उनके कुछ राजनीतिक साथियों ने चाहा कि श्रीअरविन्द फिर से राजनीति में आ जायें। श्रीअरविन्द ने उस समय भी यही कहा था कि राजनीति को मैं हेय दृष्टि से नहीं देखता, न मैं अपने को उन लोगों से ऊँचा समझता हूँ, जो राजनीति का काम कर रहे हैं। 1903 से 1910 तक मैंने कोशिश की कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने का संकल्प जनता के हृदय में दृढ़ता से बैठ जाये। वह काम पूरा हो गया। अमृतसर कांग्रेस ने उस पर मुहर लगा दी है। देश में बड़े-बड़े नेता और कार्यकर्ता मौजूद हैं। स्वराज्य तो होकर रहेगा। मेरी साधना का विषय अब यह है कि भारत इस स्वराज्य का उपयोग किसलिए करेगा?"

आरी की कीमत

एक बार की बात है एक बढ़ई था। वह दूर किसी शहर में एक सेठ के यहाँ काम करने गया। एक दिन काम करते-करते उसकी आरी टूट गयी। बिना आरी के वह काम नहीं कर सकता था, और उसका वापस अपने गाँव लौटना भी मुश्किल था। इसलिए वह शहर से सटे एक गाँव पहुँचा। इधर-उधर पूछने पर उसे लोहार का पता चल गया। वह लोहार के पास गया और बोला- "भाई मेरी आरी टूट गयी है, तुम मेरे लिए एक अच्छी सी आरी बना दोगे।"

लोहार बोला, "बना दूँगा, पर इसमें समय लगेगा, तुम कल इसी वक़्त आकर मुझसे आरी ले सकते हो।"

बढ़ई को तो जल्दी थी सो उसने कहा, "भाई कुछ पैसे अधिक ले लो पर मुझे अभी आरी बना कर दे दो!"

"बात पैसे की नहीं है भाई अगर मैं इतनी जल्दबाजी में औजार बनाऊँगा तो मुझे खुद उससे संतुष्टि नहीं होगी, मैं औजार बनाने में कभी भी अपनी तरफ से कोई कमी नहीं रखता।" लोहार ने समझाया।

बढ़ई तैयार हो गया, और अगले दिन आकर अपनी आरी ले गया। आरी बहुत अच्छी बनी थी। बढ़ई पहले की अपेक्षा आसानी से और पहले से बेहतर काम कर पा रहा था। बढ़ई ने ख़ुशी से ये बात अपने सेठ को भी बताई और लोहार की खूब प्रसंशा की। सेठ ने भी आरी को करीब से देखा!

"इसके कितने पैसे लिए उस लोहार ने?" सेठ ने बढ़ई से पूछा।

"दस रुपये!"

सेठ ने मन ही मन सोचा कि शहर में इतनी अच्छी आरी के तो कोई भी तीस रुपये देने को तैयार हो जाएगा। क्यों न उस लोहार से ऐसी दर्जनों आरियाँ बनवा कर शहर में बेची जाये। अगले दिन सेठ लोहार के पास पहुँचा और बोला, "मैं तुमसे ढेर सारी आरियाँ बनवाऊँगा और हर आरी के दस रुपये दूँगा, लेकिन मेरी एक शर्त है... आज के बाद तुम सिर्फ मेरे लिए काम करोगे। किसी और को आरी बनाकर नहीं बेचोगे।"

"मैं आपकी शर्त नहीं मान सकता।" लोहार बोला। सेठ ने सोचा कि लोहार को और अधिक पैसे चाहिए। वह बोला, "ठीक है मैं तुम्हे हर आरी के पन्द्रह रूपए दूँगा....अब तो मेरी शर्त मंजूर है।"

लोहार ने कहा, "नहीं मैं अभी भी आपकी शर्त नहीं मान सकता। मैं अपनी मेहनत का मूल्य खुद निर्धारित करूँगा। मैं आपके लिए काम नहीं कर सकता। मैं इस दाम से संतुष्ट हूँ इससे ज्यादा दाम मुझे नहीं चाहिए।"

"बड़े अजीब आदमी हो...भला कोई आती हुई लक्ष्मी को मना करता है?" व्यापारी आश्चर्य से बोला।

लोहार बोला, "आप मुझसे आरी लेंगे फिर उसे दुगने दाम में गरीब खरीदारों को बेचेंगे। लेकिन मैं किसी गरीब के शोषण का माध्यम नहीं बन सकता। अगर मैं लालच करूँगा तो उसका भुगतान कई लोगों को करना पड़ेगा, इसलिए आपका ये प्रस्ताव मैं स्वीकार नहीं कर सकता।"

सेठ समझ गया कि एक सच्चे और ईमानदार व्यक्ति को दुनिया की कोई दौलत नहीं खरीद सकती। वह अपने सिद्धांतों पर अडिग रहता है। अपने हित से ऊपर उठ कर और लोगों के बारे में सोचना एक महान गुण है। लोहार चाहता तो आसानी से अच्छे पैसे कमा सकता था। पर वह जानता था कि उसका जरा सा लालच बहुत से ज़रूरतमंद लोगों के लिए नुक्सानदायक साबित होगा और वह सेठ के लालच में नहीं पड़ता।

मित्रों !! अगर ध्यान से देखा जाए तो लोहार की तरह ही हममें से अधिकतर लोग जानते हैं कि कब हमारे स्वार्थ की वजह से बाकी लोगों को नुकसान होता है पर ये जानते हुए भी हम अपने फायदे के लिए काम करते हैं। हमें इस बर्ताव को बदलना होगा, बाकी लोग क्या करते हैं इसकी परवाह किये बगैर हमें खुद ये निर्णय करना होगा कि हम अपने फायदे के लिए ऐसा कोई काम न करें जिससे औरों को तकलीफ पहुँचती हो।

कृतज्ञता

कृतज्ञ होना, परम प्रभु की इस अनुपम कृपा को कभी न भूलना है जो हर एक को, उसके अज्ञान और गलतफ़हमियों के बावजूद, अहंकार उसके विरोधों और विद्रोहों के बावजूद, प्रत्येक व्यक्ति को छोटे से छोटे रास्ते से उसके भागवत लक्ष्य की ओर ले जाती है। हमेशा हमारे हृदय में कृतज्ञता की ऊष्मा भरी, मधुर और उज्ज्वल पवित्र लौ जलती रहनी चाहिए ताकि वह सारे अहंकार और समस्त अन्धकार को विलीन कर दे। परम प्रभु की उस 'कृपा' के लिए कृतज्ञता की लौ जो साधक को उस के लक्ष्य की ओर बढ़ाये लिये जाती है और जितना अधिक वह कृतज्ञ होगा, 'कृपा' के इस कार्य को समझेगा और उसके लिए धन्यवाद से भर उठेगा, उतना अधिक मार्ग छोटा होगा सभी गतियों में, जो शायद सबसे अधिक हर्ष प्रदान करती है, जो अमिश्रित आनन्द देती है, जो अहंकार से दूषित नहीं होती, वह है सहज कृतज्ञता। यह बहुत ही विशेष वस्तु है। यह प्रेम नहीं है, यह आत्म दान नहीं है। यह बहुत पूर्ण हर्ष है, लबा-लब हर्ष। बहुत ही कम लोग हैं, बहुत ही कम उनकी संख्या न के बराबर है, जो सच्ची धार्मिक भावना के साथ गिरजाघर या मन्दिर जाते हैं, यानी, किसी चीज़ के लिए प्रार्थना करने या भगवान से कुछ माँगने के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको समर्पित करने, कृतज्ञता प्रकट करने, अभीप्सा और आत्म-समर्पण करने के लिए जाते हैं। ऐसा करने वाला मुश्किल से लाखों में एक होता है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से – 'कृतज्ञता, तुम्हीं सभी बन्द द्वारों को खोल देती और रक्षण करने वाली भागवत कृपा को अन्दर प्रवेश करने देती हो।'

"विद्या " की अवस्था में स्व की प्रकृति आनंद है; विद्या की यह अवस्था आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है, एकत्व और सार्वभौमिकता की प्राप्ति है। स्व की प्रकृति "अविद्या" की अवस्था में, विविधता और सीमा की झूठी भावना शुद्ध आनंद की नहीं बल्कि सुख-दुख की अवस्था है, सुख की अवस्था आनंद की अवस्था से अलग है, क्योंकि यह सीमित है और इसमें दुख भी शामिल है, जबकि आनंद की प्रकृति असीम और द्वैत से ऊपर है; यह तब होता है जब दुख स्वयं आनंद बन जाता है, आनंद में ही समाहित हो जाता है, तब आनंद जन्म लेता है.

-श्रीअरविन्द

कहानी

कृतज्ञ रहें विधाता के प्रति

गाँव के स्कूल में पढ़ने वाली छुटकी आज बहुत खुश थी, उसका दाखिला शहर के एक अच्छे स्कूल में कक्षा 6 में हो गया था। आज स्कूल का पहला दिन था और वो समय से पहले ही तैयार हो कर बस का इंतज़ार कर रही थी। बस आई और छुटकी बड़े उत्साह के साथ उसमें सवार हो गयी। करीब 1 घंटे बाद जब बस स्कूल पहुँची तो सारे बच्चे उतरकर अपनी-अपनी क्लास में जाने लगे। छुटकी भी बच्चों से पूछते हुए अपनी कक्षा में पहुँची। क्लास के बच्चे गाँव से आई इस लड़की को देखकर उसका मजाक उड़ाने लगे। "साइलैंस"! टीचर बोली, "चुप हो जाइए आप सब" "ये छुटकी है, और आज से ये आपके साथ ही पढ़ेगी"। उसके बाद टीचर ने बच्चों को सरप्राइज़ टैस्ट के लिए तैयार होने को कह दिया। "चलिए, अपनी-अपनी कॉपी निकालिए और जल्दी से "दुनिया के 7 आश्चर्य लिख डालिए"। टीचर ने निर्देश दिया। सभी बच्चे जल्दी-जल्दी उत्तर लिखने लगे, छुटकी भी धीरे-धीरे अपना उत्तर लिखने लगी। जब सब ने अपनी कॉपी जमा कर दी, तब टीचर ने छुटकी से पूछा, "क्या हुआ बेटा, आपको जितना पता है उतना ही लिखिए, इन बच्चों को तो मैंने कुछ दिन पहले ही दुनिया के सात आश्चर्य बताए थे"। "जी, मैं तो सोच रही थी कि इतनी सारी चीजें हैं। इनमें से कौन सी सात चीजें लिखूँ", छुटकी टीचर को अपनी कॉपी थमाते हुए बोली। टीचर ने सब की कॉपियाँ जोर-जोर से पढ़नी शुरू की.., ज्यादातर बच्चों ने अपने उत्तर सही दिए थे। ताजमहल, चीचेनइत्ज़ा, क्राइस्ट द रिडीमर की प्रतिमा, कोलोसम, चीन की विशाल दीवार माचूपिच्चु, पेट्रा टीचर खुश थीं कि बच्चों को उनका पढ़ाया पाठ याद किया था। बच्चे भी काफी उत्साहित थे और एक-दूसरे को बधाई दे रहे थे। अंत में टीचर ने छुटकी की कॉपी उठायी, और उसका उत्तर भी सब के सामने पढ़ना शुरू किया....दुनिया के 7 आश्चर्य हैं। देख पाना, सुन पाना, किसी चीज को महसूस कर पाना, हँस पाना, प्रेम कर पाना, सोच पाना, दया कर पाना। छुटकी के उत्तर सुन पूरी क्लास में सन्नाटा छा गया। टीचर भी आवाक थी, आज गाँव से आई एक बच्ची ने उन सभी को भगवान के दिए उन अनमोल तोहफों का आभास करा दिया था जिन की तरफ उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया था।

ब्रह्मांड का उच्चतम सिद्धान्त और प्रवृत्ति मन नहीं है; उच्चतम सिद्धांत "सत" है जो आनंद में चित के माध्यम से काम कर रहा है, अनंत अस्तित्व अनंत आनंद में अनंत बल के माध्यम से काम करते हैं।

-श्रीअरविन्द

जब श्रीमाँ यहाँ पधारीं

24 अप्रैल, 1920 वह दिन था, जब माताजी यहाँ पधारीं : यह उनके दूसरे आगमन का दिन था। पहली बार वे 26 मार्च 1914 को आई थीं। परन्तु 24 अप्रैल, 1920 को वे यहाँ पधारीं और यहीं की हो गईं। उनके भावी कार्य का क्षेत्र भारत बन गया। आध्यात्मिक रूपान्तर के पथनिर्माता एक और एक दो हो गये।

कहते हैं तभी से साधना का विकास द्रुततर गति से होने लगा, ऐसी गति से कि श्रीअरविन्द को "आर्य" पत्रिका के लिए लिखना कठिन हो गया, आध्यात्मिक कार्य की व्यस्तता इस हद तक बढ़ गई। सन् 20 के अगस्त अंक के साथ सातवें वर्ष के बीच में ही पत्रिका बन्द कर देनी पड़ी। वह विकास की गति उत्तरोत्तर बढ़ती गई और छ: वर्षों के अल्प काल में 24 नवम्बर 1926 के दिन श्रीअरविन्द ने वह आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त की, जिसकी सन् 20 से पहले उन्हें दूरस्थ लक्ष्य के रूप में भावनामात्र ही थी। वही उपलब्धि व्यापक आध्यात्मिक कार्य का आधार बनी। श्रीअरविन्द एकान्त में एकाग्र आध्यात्मिक बल से अतिमानसिक चेतना का मानवमात्र के लिए अवतरण साधित करने लगे और इधर आश्रम खुला, जिज्ञासु लोग स्वीकृत होने लगे और श्रीमाँ उन्हें आत्मरस खुले हाथों बाँटने लगीं। इस अमृतरम का आस्वादन देश-विदेश के कितने स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों ने किया है, कितनों ने जीवन की वास्तविक प्रेरणा उपलब्ध की है और कितने जाति के रूपांतर-महायज्ञ के लिए जीवन लगा देने में प्रवृत्त हुए हैं, इसका कुछ हिसाब नहीं। इन सबके लिए प्रत्यक्ष ही श्रीमाँ का व्यक्तित्व साक्षात जीवन-ज्योति है, जिसके स्पर्श से उन्होंने स्वयं जीवन प्राप्त किया है। वे 24 अप्रैल को कभी भूल नहीं सकते। 24 अप्रैल की हर पुनरावृत्ति उन्हें आल्हादित कर देती

है। इसी दिन तो श्रीमाँ अन्तिम रूप में यहाँ पधारी थीं।

प्रत्यक्ष ही असंख्य लोगों ने उनका सम्पर्क प्राप्त किया है और जीवन में प्रेरणा उपलब्ध की है। परन्तु उनकी पुस्तकों के पाठकों की संख्या जरूर ही इनसे कहीं अधिक है और अनेक ही लोग ऐसे हैं जिन्होंने केवल पुस्तकों द्वारा ही उनके अस्तित्व का स्पर्श लाभ किया और जीवन के लिए प्रेरणा और स्फूर्त्ति प्राप्त की है। उनके लिए भी वह दिन, जिस दिन श्रीमाँ पधारी थीं और इसे उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र अंगीकार किया था, विशेष स्मरण और कृतज्ञता का दिन होगा।

परन्तु जो आध्यात्मिक कार्य श्रीअरविन्द और श्रीमाँ ने शुरू किया और जिसे अब श्रीमाँ आगे विकसित कर रही हैं, इतना पुराना होते हुए भी, अपनी शैशवावस्था में ही हैं। इसका लक्ष्य है अतिमानसिक अवतरण और इस अवतरण द्वारा जाति में आध्यात्मिक युग का सूत्र पात तथा मानव विकास में एक नये धरातल पर आरोहण।

यह लक्ष्य श्रीअरविन्द और श्रीमाँ के अनुसार अनिवार्य रूप में चरितार्थ होगा। यह तो प्राकृतिक विकासक्रम स्वयं का ध्येय है और देर-सवेर जब तक यह चरितार्थ होगा और मानव-जीवन के प्रत्येक रूप में इस अवतरण तथा मानव-रूपान्तर के महान् प्रवर्तकों श्रीअरविन्द और श्रीमाँ को स्मरण करेंगे। तब कैसी होगी हमारी 24 अप्रैल की भावना, उस दिन की जब श्रीमाँ यहाँ पधारी थीं।

(अदिति से)

धरती के भाग्य का निर्णयस्थल-भारत

डॉ.जे.पी.सिंह
चेयरमैन

आज उन्तीस मार्च ऐसा महत्वूर्ण दिवस विश्व के इतिहास में है जिस दिन 1914 को प्रथम बार भौतिक रुप से श्रीमाँ पाण्डिचेरी में श्रीअरविन्द से मिलने आयीं। इस प्रकार यह वर्ष इस मिलन का शताब्दी वर्ष है। श्रीअरविन्द ने जिन चार महत्वपूर्ण वैश्विक घटनाओं को सर्वाधिक प्रभावशाली रुप में चिह्नित किया है वे हैं- ट्राय नगर का घेरा डालना, ईसामसीह का सूली पर चढ़ाया जाना, श्री कृष्ण का मथुरा से वृन्दावन प्रस्थान करना एवं श्री कृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र में गीता का संदेश दिया जाना। पाँचवी घटना ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमाँ का भारत आगमन इस महान श्रेणी में आती है। भारत आगमन की यह युगांतरकारी घटना मानव जाति की दशा एवं दिशा दोनों को निर्णयात्मक रुप से बदल रही है। यह मिलन 'भागवत महूर्त' की शुरुआत कही जा सकती है।

मनुष्य एवं मनुष्यता का प्रादुर्भाव ही भागवत शक्तियों के कार्यों और अतिमानव के अवतरण में योगदान के लिए हुआ है। श्रीमाँ ने तीन शब्दों में इस प्रक्रिया में सहयोग देने का निर्देश दिया है-'समर्पण और विश्वास'। स्वयं को विश्वास और प्रतीति के साथ 'डिवाइन पावर' के सामने समर्पित कर दो। आपके अंतर्मन से संवाद में श्रीमाँ जो कहे सिर्फ वही सुनो और वही करो, धीरे-धीरे भागवत शक्ति का मार्ग स्वत: खुलता जायेगा, प्रकाशित होता जायेगा।

सौ साल पीछे देखें तो यह वही काल खण्ड है जबकि श्रीअरविन्द बीसवीं सदी के पहले दशक में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता एवं संरचना का काम लगभग पूरा कर चुके थे। वह स्वतंत्रता का आह्वान कर चुके थे और दैविक शक्तियाँ स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए उनका आह्वान कर रही थीं। भारत में अतिमानस और उच्चतर जीवन के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने के लिए सक्रिय होने के आदेश हो चुके थे। इस दैवीय अभियान को सक्रिय करने के लिए 4 अप्रैल 1910 को वे पाण्डचेरी पहुँचे। चार वर्षों के बाद (29 मार्च, 1914) श्रीमाँ भी पाण्डिचेरी पहुँच गयीं। दोनों का महामिलन महज एक घटना नहीं है।

यह विधि द्वारा संयोजित और निर्धारित अतिमानस के निर्माण का एक उच्चतम उपक्रम था। जिसके नियोजक हैं श्रीअरविन्द और नियंता श्रीमाँ। श्रीमाँ और श्रीअरविन्द ने जीवन के दीप्ति तत्त्व की तरह मानवता का पथ-प्रदर्शन किया और उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर होने के लिए दीप प्रज्वलित किया।

भारत 2020 में महाशक्ति बनने के सपने देख रहा है। श्रीअरविन्द ने कहा है कि भारत की नियति जगत गुरु बनने की है। श्रीअरविन्द के शब्द समय सापेक्ष हैं। लगता है वह समय आ रहा है जबकि समूची मानवता भारत के आध्यात्मिक गुरुत्वाकर्षण में बंधी होगी और जब वह समय नजदीक है तब हमें उच्चतर जीवन की परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए आवश्यक सक्रियता के बारे में गंभीरता से विचार करना होगा। सत्य तो यह है कि श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के कार्यों की गहराई समाज में व्यापक हो रही है।

श्रीमाँ का जन्म फ्रांस में हुआ था लेकिन उनकी चेतना में जगद्गुरु भारत सदैव विद्यमान रहा। उन्होंने स्वयं लिखा है, "जन्म, प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ, अपनी इच्छा और रुचि से मैं भारतीय हूँ।" उनकी वार्ताओं, संदेशों और लेखों में सर्वत्र भारत व्याप्त है - एक जीवन्त सत्ता के रुप में। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के निकटस्थ एक मंत्री ने श्रीमाँ से भेंट के बाद उनकी वाणी को अपनी स्मृति से नोट किया, वह इस प्रकार थी - "दुनिया में केवल एक देश है जिसको मालूम है कि केवल एक 'सत्य' है जिस पर हर चीज को निर्भर रहना चाहिए और वह देश है भारत। दूसरे देश इसको भूल गये हैं लेकिन भारत के लोगों में यह बात गहरे में विद्यमान है और एक दिन यह बाहर व्यक्त होगी। हम सबको इसे पहचानना चाहिए और इसके लिए कार्य करना चाहिए। भारत सत्य का पालना (Cradle) है और यह संसार को 'सत्य' की ओर ले चलेगी। भारत संसार में अपना सच्चा स्थान तभी प्राप्त करेगा जब इस बात को समझ लेगा।" श्रीमाँ ने आगे कहा है कि "मैं देश की परिस्थितियों से अवगत हूँ। यदि केवल एक व्यक्ति स्वयं को ईमानदारी से सत्य अपने अधिकार में सौंप दे तो वह देश और दुनिया में परिवर्तन ला सकता है।"

देश की परिस्थितयाँ जैसी हैं, उनका हल्का सा विश्लेषण भी निराशा एवं हताश की ओर ले जाता है। ऐसा लगता है कि मानव जीवन की सारी कुत्सित वृत्तियाँ इसी देश में आ विराजी हैं। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि श्रीमाँ इस अधोगति से अपरिचित रही होंगी। भारत के प्रति उनका लगाव और अटूट आस्था कितनी बलवती थीं, यह उनकी 3 फरवरी, 1968 की एक अन्तर्दृष्टि से ज्ञात होता है- "भारत दुनिया की सारी मानवीय कठिनाईयों का प्रतिनिधित्व करता है और भारत में इनका समाधान प्राप्त होगा।" (इण्डिया द मदर, पृ. 172)

सृष्टि के इतिहास में जिस चीज ने धरती को सृष्टि का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि बनाया है, उसी दृष्य-प्रपंच का अब आगमन हो रहा है। भारत बन रहा है धरा का प्रतिनिधि और फिर सुनाई देती है श्रीमाँ की यह अमृतवाणी- "भारत ही वह स्थान है जहाँ धरती के भाग्य का निर्णय होगा.....। यह धरती का विनाश चाहने वाली शक्तियों और पार्थिव रुपान्तर के बीच संघर्ष की तरह है।"

26 अप्रैल, 1972 को श्रीमाँ ने इन्दिरा गाँधी को जो संदेश भेजा था, वह इस प्रकार है- "भारत संसार में अपना सच्चा स्थान तभी प्राप्त करेगा जब वह सर्वांगीण रुप से दिव्य जीवन का संदेशवाहक बनेगा।"

भारत को जगद्गुरु होना है तो दूसरे देशों को युद्धों में हराकर नहीं, हथियारों के होड़ में अग्रणी होकर नहीं बल्कि अपनी आध्यात्मिक शक्ति को पहचानते हुए आध्यात्मिक संदेश वाहक बनकर ही। श्रीमाँ ने कहा..... "यहाँ का एक सीधा-साधा, अशिक्षित किसान यूरोप के बुद्धिजीवियों की अपेक्षा अपने हृदय में भगवान के अधिक निकट है।" (इण्डिया द मदर, पृ0 232)।

भारत का सच्चा स्वरुप यही है। पाश्चात्य जीवन शैली और विचारधारा को ही जीवन का सर्वस्व समझने और आधुनिक कहलाने की विध्वंसक दौड़ में जो तथाकथित बुद्धिजीवी शमिल हैं उनको अब जागना चाहिए। भारत की महानता मात्र अपने लिए नहीं है, मानव जाति के लिए है। मानव-जाति का भविष्य भारत के भविष्य पर टिका हुआ है। यह विचार हम भारतीयों को एक दायित्व-बोध से भर देता है। हमें समझना होगा कि श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की कर्मधारा व्यक्ति के उत्थान एवं सिद्धि के लिए नहीं है। वह है समस्त मानवता के लिए।

श्रीमाँ भारत के भविष्य को राजनीति की खिड़की में से नहीं देखती। वे उसके आध्यात्मिक मूल्यों को देखती हैं। उनकी दिव्य दृष्टि भारत के भविष्य के बारे में कहती हैं:-

"भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगत का गुरु है। जगत का भावी ढाँचा भारत पर निर्भर है। भारत जीती-जागती आत्मा है। भारत जगत में आध्यात्मिक ज्ञान को मूर्त रुप दे रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत का महत्व समझना चाहिए और अपने कार्य की योजना उसके अनुसार बनानी चाहिए।"

कला को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए, दृष्टि की प्रेरणा और प्रत्यक्षता जो अब भी प्राचीन परंपराओं के धारकों के बीच मौजूद है, भारतीय जाति के जन्मजात कौशल और स्वाद, भारतीय हाथ की निपुणता और भारतीय आंख की सहज दृष्टि को पुनः प्राप्त करना चाहिए और पूरा राष्ट्र फिर से प्राचीन संस्कृति के उच्च स्तर तक उठ सकेगा - और उच्चतर...।

-श्रीमाँ

प्रयास

सबसे बढ़कर आवश्यक गुण है लगन, सहिष्णुता, और एक प्रकार का आन्तरिक प्रसन्न भाव जो निरुत्साहित न होने में, उदास न होने में और मुस्कुराहट के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करने में तुम्हारा सहायक होता है। अंग्रेजी में एक शब्द है जो इस भाव को अच्छी तरह व्यक्त करता है। और वह है 'चियरफ़ुलनेस' (cheerfulness)-प्रसन्नचित्तता। यदि तुम इसे अपने अन्दर बनाये रखो तो तुम उन सब बुरे प्रभावों के साथ, जो तुम्हें प्रगति करने से रोकने का प्रयास करते हैं, प्रकाश के अन्दर, बहुत अच्छे तरीक़े से लड़ सकते हो, उनका अधिक अच्छी तरह से विरोध कर सकते हो। सब विरोधों के होते हुए अपनी सहन-शक्ति बनाये रखने के लिए हमारे सहारे का आधार अचल-अटल होना चाहिए, वह है 'सत' का, 'परम सत्य का सहारा'। किसी और को खोजना बेकार है। केवल यही है जो कभी साथ नहीं छोड़ता।

यदि तुम हतोत्साह हुए बिना और प्रयास छोड़े बिना, क्योंकि वह अत्यन्त कठिन है, कठिनाइयों का सामना करने में समर्थ नहीं हो; और यदि तुम असमर्थ... हाँ, आघातों को ग्रहण करने और फिर भी प्रयास जारी रखने में, आघातों को, जैसा कि कहा जाता है, "पीजाने" में-अपने दोषों के फलस्वरूप जब आघात पाते हो, उन्हें पीजाने और निरूत्साह हुए बिना आगे बढ़ना जारी रखने में-असमर्थ होते हो, तो तुम बहुत दूर तक आगे नहीं जाते; प्रथम मोड़ पर ही, जहाँ तुम्हारा तुच्छ अभ्यस्त जीवन आँख से ओझल हो जाता है, तुम निराशा में जा गिरते हो और प्रयास छोड़ बैठते हो। इसका अत्यन्त स्थूल रूप है अध्यवसाय। जब तक तुम एक कही चीज़, को जब ज़रूरत हो, हज़ारों बार फिर-फिर आरम्भ करने का संकल्पन करो...। जानते हो, लोग निराश होकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं मैंने तो समझा था कि यह हो चुका, पर मुझे फिर से आरम्भ करना होगा!" और यदि उनसे कहा जाता है: "परन्तु यह तो कुछ नहीं, तुम्हें शायद फिर से सौ बार, दो सौ बार, हजार बार, प्रारम्भ करना होगा; तुम एक पग आगे बढ़ते हो और समझते हो कि सुरक्षित हो गये, परन्तु सर्वदा कोई चीज़ बनी रहेगी। जो उसी कठिनाई को थोड़े दिन बाद वापस ले आयेगा। तुम समझते हो कि तुमने समस्या हल कर ली, तुम्हें फिर एक बार फिर हल करना होगा; वह तुम्हारे सामने ऐसे उपस्थिति होगी जो देखने में तो ज़रा भिन्न होगी, पर होगी वही समस्या" और यदि तुमने निश्चय नहीं किया कि यदि वह लाखों बार वापस आये भी तो मैं उसे लाखों बार हल करूँगा, पर इसे समाप्त करके ही छोड़ूँगा", तो हाँ, यह एकदम अपरिहार्य हैं।

"सत्य" केवल सच बोलने की सरल आदिम अवधारणा मात्र नहीं है, बल्कि चेतना की एक ऐसी स्थिति है जिसमें आनंद व्याप्त है और जिसके परिणामस्वरूप एक पूर्ण सहज और मुक्त गतिविधि जिसमें कोई झूठ या त्रुटि नहीं है; यह दिव्य प्रकृति यानि वेदांतिक अमृत की एक अवस्था है।

-श्रीअरविन्द

कहानी

एक समय की बात है एक राज्य में एक प्रतापी राजा राज करता था। एक दिन उसके दरबार में एक विदेशी आगंतुक आया और उसने राजा को एक सुंदर पत्थर उपहार स्वरुप प्रदान किया। राजा वह पत्थर देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उस पत्थर से भगवान विष्णु की प्रतिमा का निर्माण कर उसे राज्य के मंदिर में स्थापित करने का निर्णय लिया और प्रतिमा निर्माण का कार्य राज्य के महामंत्री को सौंप दिया। महामंत्री गाँव के सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकार के पास गया और उसे वह पत्थर देते हुए बोला, "महाराज मंदिर में भगवान विष्णु की प्रतिमा तैयार कर राजमहल पहुँचा देना। इसके लिए तुम्हें 50 स्वर्ण मुद्रायें दी जायेंगी।" 50 स्वर्ण मुद्राओं की बात सुनकर मूर्तिकार ख़ुश हो गया और महामंत्री के जाने के उपरांत प्रतिमा का निर्माण कार्य प्रारंभ करने के उद्धेश्य से अपने औज़ार ले आया।

मूर्तिकारने अपने औज़ारों में से एक हथौड़ा लिया और पत्थर के ऊपर वार करना शुरु किया। पत्थर जस का तस रहा मूर्तिकार ने हथौड़े के कई वार पत्थर पर किये। किन्तु पत्थर नहीं टूटा पचास बार प्रयास करने के उपंरात मूर्तिकार ने अंतिम बार प्रयास करने के उद्धेश्य से हथौड़ा उठाया, कि किन्तु यह सोचकर हथौड़े से प्रहार करने के पूर्व ही उसने हाथ खींच लिया कि जब पचास बार वार करने पर भी पत्थर नहीं टूटा, तो अब क्या टूटेगा। उसने वह पत्थर लिया और महामंत्री को लौटाने चला गया। उसने महामंत्री से क्षमा माँगी और कहाँ, मुझे क्षमा कर दो, मैं इस पत्थर से मुर्ति नही बना पाउंगा। महामंत्री को आश्चर्य हुआ उन्होंने पुछा मगर क्यों ? मूर्तिकारने पत्थर को तोड़ पाने कि अपनी असमर्थता जताई। महामंत्री कुछ न बोले। मूर्तिकार वापस चला गया। वह बहुत दुखी था । महामंत्री ने कुछ सोचा और एक दुसरे मूर्तिकारको बुलाया दुसरा मूर्तिकार आया, महामंत्री ने उसे भी वह पत्थर दिखाया और मुर्ति बनाने का आदेश दिया। उन्होंने कहा कि पहला मूर्तिकार बहुत प्रयास करके भी इस पत्थर को नहीं तोड़ सका। नये मूर्तिकारने महामंत्री के हाथ से वह पत्थर लिया, और महामंत्री के सामने ही उस पर हथौड़े से प्रहार किया और वह पत्थर एक बार में ही टूट गया। पत्थर टूटने के बाद मूर्तिकार प्रतिमा बनाने में जुट गया। इधर महामंत्री सोचने लगा कि काश, पहले मूर्तिकार ने एक अंतिम प्रयास और किया होता, तो सफ़ल हो गया होता और 50 स्वर्ण मुद्राओं का हक़दार भी बनता।

हमें असफलता मिलने पर भी प्रयास करना नहीं छोड़ना चाहिए क्या पता एक और प्रयास से आपका कार्य पूर्ण हो जाए।

"प्रभु! आप हमारी अभीप्सा की अग्नि-लौ को स्वीकार करें और हमारे सहर्ष समर्पण एवं घनिष्ठ भावपूर्ण लगन को अपना लें।"

-श्रीमाँ

प्रभु! हमें अदम्य साहस प्रदान करो जो कि तुम में अचल विश्वास के द्वारा हमें प्राप्त होता है।

प्रभु! हमें शक्ति दो कि हम उस परम आदर्श के अनुकूल सच्चे भाव से जी सकें जिसकी हम उद्घोषणा करते हैं।

प्रभु! हमें एक महत सुन्दर भविष्य के प्रति विश्वास और उसे संसिद्ध करने की क्षमता प्रदान करो।

प्रभु! चेतना एवं शान्ति की हममें निरन्तर वृद्धि होने दो जिससे हम तुम्हारे एकमेव दिव्य नियम के विश्वसनीय माध्यम बन सकें।

प्रभु! हममें ऐसा कुछ भी न हो जो तुम्हारे कार्य को धूमिल कर सके।

(31 दिसम्बर 1951)

"सिर्फ इसी संसार में यह मुमकिन है कि मनुष्य उन्नति कर सकता है और अपने विगत तथा वर्तमान जीवन के भारों को हल्का कर सकता है। साथ ही वह एक अधिक मंगलमय, एक अधिक उत्तम जीवन की तैयारी भी कर सकता है। यह केवल यहीं इस पृथ्वी पर संभव है कि तुम्हें उस शाश्वत की ओर बढ़ने का मौका प्राप्त हुआ है। मैंने अनेक दूसरी सृष्टियाँ देखी हैं जो सुस्त हैं, धंधली हैं और अंधेरों से भरी हुई हैं। जहाँ के प्राणी ऊबते हैं और खुशियों को अंधों की तरह टटोलते हैं। मेरे बच्चों, तुम्हें हर कदम पर रास्ता बनाना है और दृढ़तापूर्वक सत्य के भविश्य में पाँव रखना है। तुम्हें दुराग्रही होने की सीमा तक दृढ़ होना है क्योंकि भगवान स्वयं अपने उद्देश्य में अज्ञान, अन्धकार, दुर्बोधता एवं अवसाद को हटाने में दुराग्रही हैं। उस सर्वोच्च ब्रह्म को बिना पूर्ण हुए हम नहीं जान सकते। वर्षों पर वर्ष, सदियों पर सदियाँ बीत जाते हैं। कार्य अनवरत्त जारी है।"

-श्रीमाँ

मृत्यु के पश्चात् अंतरात्मा की यात्रा

डॉ. बी. एल. गुप्ता

जगत, जीवन और मृत्यु अनन्त काल से असमाधेय प्रश्न बने हुए हैं । युगों में युग के स्तरानुसार इन्हें व्याख्यायित और परिभाषित किया गया है और जब इनकी पहेली सुलझी नहीं तो जगत् के अग्रणी नेतृत्व करने वालों ने जगत् को नश्वर तथा मनुष्य को मरणधर्मा घोषित कर दिया।

महायोगी महर्षि श्रीअरविन्द के अनुसार जीवन का उद्देश्य है रूपान्तरण एवं भागवत अभिव्यक्तिकरण। वे हमें बताते हैं कि 'मृत्यु' जड़ प्रकृति की चेतना में पूर्णता और विकास की माँग को जागृत करने का एक अनिवार्य साधन है। उसके बिना प्राणी जिस अवस्था में हैं उसी में अनिश्चित समय के लिये सन्तोष किये पड़े रहते। मृत्यु वह प्रश्न है जिसे प्रकृति सदा ही 'जीवन' के सामने उसे यह याद दिलाने के लिये रखती है कि उसने अभी तक अपने को नहीं ढूँढ़ा है। यदि मृत्यु का घेरा न होता तो प्राणी सदा के लिये एक अपूर्ण ढांचे के साथ बँधा रहता। मृत्यु द्वारा पीछा किये जाने पर वह पूर्ण जीवन के प्रति जागृत हो जाता है तथा उसके साधन और उसकी सम्भावना की खोज करता है।

मृत्यु इसलिये होती है कि हमारा यह स्थूल शरीर हमारी सत्ता के सूक्ष्मतर भागों - प्राण, भाव केन्द्र और मन के साथ-साथ चलने से इन्कार कर देता है। परिणाम स्वरूप इनका संतुलन भंग हो जाता है, ज्यों ही शरीर कुछ उन्नति कर चुकता है उसे बैठ जाने की आवश्यकता पड़ती है और वह थक जाता है और कहता है "ठहरो, मुझे आराम करने के लिये कुछ समय दो।" यही बात उसे मृत्यु की ओर ले जाती है। यदि उसके अन्दर सदा पहले से अधिक अच्छा करने का, सदा अधिक स्पष्ट, अधिक सुन्दर और बालकवत अथवा अधिक युवा बने रहने का यह उत्साह होता तो व्यक्ति 'प्रकृति' की इस भयंकर प्रणाली से बच सकता था।

एक मूलभूत और मौलिक सत्य और तथ्य है जिसे सारी मानव जाति को समझ लेना है और हृदयंगम कर लेना है कि 'जीवन अमर है' एक अखंड, अविभाज्य, अविच्छेद्य। उसके टुकड़े नहीं होते। वही जीवन आगे चलता है। मृत्यु के बाद 'जीवन' के दो काल होते हैं - एक तो होता है यात्रा का काल और दूसरा होता है विश्रांति का काल। यात्रा का अर्थ होता है उन सभी कोषों या आवरणों को धीरे-धीरे उतार फेंकना जो हृत्पुरुष या चैत्य पुरुष अथवा अन्तरात्मा को घेरे रहते हैं तथा उसके पार्थिव ढांचे को संगठित करते हैं। भौतिक शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर को भी जाना होता है और फिर प्राणमय तथा अन्त में मनोमय कोष को भी जाना होता है।

मृत्यु के बाद जीव को बस इसी बात की आवश्यकता होती है और इसे ही वह चाहता भी है कि वह आसानी और तेजी के साथ अपने विश्रांति स्थल में पहुँच जाय।

मृत्यु के समय सत्ता मस्तिष्क से होकर शरीर के बाहर चली जाती है। वह पहले सूक्ष्म शरीर में जाती है और फिर सत्ता के अन्य लोकों में कुछ समय के लिये जाती है जहाँ वह अपने पार्थिव जीवन के परिणाम स्वरूप कुछ अनुभूतियों में से गुजरती है।

पीछे वह चैत्य लोक में जाती है। वहाँ वह एक प्रकार की निद्रा की स्थिति में तब तक विश्राम करती रहती है जब तक कि पृथ्वी पर नया जन्म आरंभ करने का उसका समय नहीं आ जाता।

दिवंगत आत्मा की यह यात्रा अत्यन्त कठिन और विपत्तियों से भरी होती है, विशेष कर प्राणमय जगत से गुजरने तक की। इस समय उसे उन लोगों की सहायता की आवश्यकता होती है जो अभी पृथ्वी पर हैं, उसके सगे-संबंधी और उसके इष्ट-मित्र, कुटुम्बीजन और परिजन रहे हैं और जो उसके शुभ चिन्तक रहे हैं, वे उसकी सहायता कर सकते हैं।

दिवंगत आत्मा की सहायता की जा सकती है प्रार्थना एवं शुभेच्छा द्वारा , उसकी इस कठिन, जटिल एवं भयावह यात्रा में उसको सहायता पहुँचाई जा सकती है। इस सहायता को ही लौकिक भाषा में 'श्रद्धांजलि' के नाम से अभिहित किया जाता है। उसके लिये की जाने वाली प्रार्थना एवं शुभेच्छा की शक्ति उसके लिये वहाँ रक्षा-कवच का काम करती है जो उसे उस कठिन यात्रा से गुजार देती है, आगे बढ़ा देती है। एक चीज जो नहीं करनी चाहिये वह है दिवगंत आत्मा के लिये दुःख-शोक, रुदन या आसक्ति की भावना रखकर उसे पीछे खींचना, या कुछ ऐसा करना कि जिससे कि वह पृथ्वी के समीप खिंच आये या विश्रांति-स्थल तक पहुँचने की अपनी यात्रा में रोक लिया जाये। दुःख एवं शोक अथवा रुदन करने से दिवंगत आत्मा की प्रगति में बाधा आती है और वह आगे बढ़ने की अपेक्षा पीछे खिंच आती है।

अतएव दिवंगत आत्मा को सहायता पहुँचाने हेतु हम सबको सामुदायिक रूप से संघबद्ध प्रणाली से प्रार्थना ही करनी चाहिये और यह प्रार्थना प्रत्येक दिवंगत आत्मा के लिये की जानी चाहिये क्योंकि सभी से हमारा अंतरात्मिक संबंध है। किन्तु, प्रत्येक मानव को जीवन में इस सत्य को आत्मिक रूप से स्वीकार करना ही होगा कि वह भागवत-पुत्र है, अतएव वह अ-मरणधर्मा है तथा अजरत्व-अमरत्व उसका जन्म सिद्ध अधिकार है।

(उपरोक्त पंक्तियों के लेखक, श्रीमाँ के परम भक्त, श्रीअरविन्द सोसाइटी इन्दौर के सूत्रधार एवं वहाँ के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा.बी.एल. जी गुप्ता ने दि. 18-02-2002 को अपनी 51 वर्ष की आयु में इह लीला संवरण की। श्रीमाँ श्रीअरविन्द के रंग में रँगे श्री गुप्ता जी अपनी भक्ति की रस धार से इंदौरवासियों को सराबोर करते रहे और दिव्य यात्रा के इस महान अभियान में लोगों का मार्गदर्शन करते रहे। वे एक ज्योति स्तम्भ थे जिनकी सेवायें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। हम सबके प्यारे और अनोखे व्यक्तित्व के धनी श्री दादा जी को हमारे सादर नमन एवं विनम्र श्रद्धांजलि। सं०)

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा- वर्ष-2002, अंक-2

श्रीमाँ: महासमाधि के स्वर्ण-कण

"यदि कभी मैं अपना शरीर छोड़ूँ तो मेरी चेतना तुम्हारे साथ रहेगी", श्रीमाँ ने आश्रम के परम साधक श्री नलिनीकांत दा से एक बार कहा था और 17 नवम्बर 1973 की सांझ 7 बजकर 25 मिनट पर श्रीमाँ ने अपना यह भौतिक शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु का तात्कालिक कारण हृदयगति का रूकना बताया गया। श्रीअरविन्द की समाधि के ही भीतर उसके ऊपरी कक्ष में श्रीमाँ को 20 नवम्बर 1973 की प्रात: 8 बजे महासमाधि दे दी गयी।

उस दिन श्रीअरविन्द की समाधि पर माथा टेकते समय यह विस्मृत हो गया कि यहीं श्रीमाँ की समाधि है। यह महसूस नहीं हुआ कि श्रीमाँ अब सशरीर हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं, उनके नेत्रों में हम कभी झाँक नहीं सकेंगे। सदा की तरह दृष्टि उठाकर उनके कक्ष की ओर देखा और मन ही मन प्रणाम किया। पर वास्तविकता का ज्ञान होते ही पलकें भीग गईं। क्या सचमुच श्रीमाँ अब नहीं हैं। जिन बालकों की आँखों में श्रीमाँ अपने नेत्रों से एक बार झाँक चुकी हैं क्या वे भूल सकते हैं कि श्रीमाँ अब उन्हें नहीं देख रहीं। वस्तुत: सबकी अन्तर चेतना में श्रीमाँ अपने समस्त स्थूल-सूक्ष्म व्यक्तित्व से वैसे ही वर्तमान हैं जैसे पहले थीं। (श्रीमाँ का नालिनी दा को दिया हुआ यह आश्वासन कि 'मेरी चेतना सदा तुम्हारे साथ रहेगी' उन सभी को दिया हुआ आश्वासन है जो श्रीमाँ की दिव्य प्रकाशमयी, प्रेममयी शक्ति की ओर तनिक भी उन्मुख हुए तथा उनकी चेतना से क्षणमात्र को भी स्पर्शित हुए हैं।) याद आते हैं श्रीमाँ के ये शब्द:-

"विश्वास रखो मुझे तुम्हारी कोई भी भूल, तुम्हारा कोई भी दोष, तुम्हारे विषय में हतोत्सार नहीं करेगा। असत्य की शक्तियों के विरुद्ध तुम्हारी इस संघर्ष यात्रा में तो मैं तुम्हारे साथ हूँ।" "मैं जीवन के हर स्तर, हर क्षेत्र में तुम्हारे साथ हूँ तुम्हारी उच्चतर चेतना से लेकर निम्न भौतिक चेतना में भी तुम्हारे साथ हूँ.....

जिन्होंने श्रीअरविन्द और मेरी शिक्षाओं को स्वीकार किया है, वे चाहे कहीं भी हों, पृथ्वी के किसी भी छोर पर हों, जब-जब वे मेरी अभीप्सा करते हैं, मुझे पुकारते हैं तो मैं अपनी चेतनाअपनी शक्ति, अपनी प्रेरणा और सुरक्षा उन्हें भेजती हूँ।"

इन शब्दों की तेजोभूमि ध्वनि अन्तर के विषाद और श्रीमाँ के विछोह की प्रतीति को तत्काल बहुत कम कर देती है। दुख, शोक, रोग, मृत्यु से ग्रस्त इस मनुष्य जीवन को अपनी 'आनन्दमयी', 'चैतन्यमयी', 'सत्यमयी' ज्योति से प्रभावान करने के लिए ही तो स्वयं भगवती शक्ति ने श्रीमाँ के रूप में देह की सीमाएँ और उनके दोषगुण स्वेच्छा से स्वीकार किए थे, क्योंकि वे अपने बच्चों के साथ कुछ काल के लिए एक होना चाहती थीं। शायद पृथ्वी जीवन में भगवान की भागवत शक्ति ने इतने उजागर रूप में कभी अपना स्वरूप प्रकट नहीं किया होगा।

लघुमानव ने इतने सामीप्य से प्रेम की इस शीतल उष्मा का स्पर्श भी पहले कभी नहीं किया होगा, जितना इस भाग्यवान युग में श्रीमाँ के रूप में भगवान की पराचेतना शक्ति को पाने, स्पर्श करने और उसके साकार निर्देशन में कार्य करने का स्वर्ण अवसर पाया।

अनादि युगों से इस सृष्टि में न जाने कितने जन्म हर क्षण हो रहे हैं और उन्हीं क्षणों में न जाने कितने जीवन काल-कवलित हो रहे हैं। कौन जानता था कि फ्रांस के एक सम्पन्न परिवार में 21 फरवरी 1878 को जन्म लेने वाली बालिका एक दिन सुदूर भविष्य में विश्व की मातृशक्ति और वात्सल्य का अद्वितीय उपहार बन पहचानी जायेगीं। जब श्रीमाँ 13 वर्ष की बालिका थी, एक विचित्र रूपान्तकारी अनुभव से गुजरीं जो लगातार एक वर्ष तक चलता रहा। ज्यों ही वे रात को बिछौने पर लेटती उन्हें महसूस होता कि वे शरीर से निकल कर ऊपर की ओर उठ गई हैं। अपने मकान और शहर के भी बहुत ऊपर उठ गई हैं। फिर वे देखतीं, उन्होंने सुनहरा चोगा पहन रखा है जो उनसे कहीं अधिक बड़ा है। जैसे-जैसे वे ऊपर उठतीं वह चोगा उनके चारों ओर गोलाकार रूप में फैलता जाता और शहर के ऊपर एक विशाल छत का रूप ले लेता। फिर उसी चोगे की छाया में सभी ओर से पुरूष, स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, बीमार दुखी इन्सान आकर एकत्र होते और उनसे सहायता की विनती करते। अपनी विपत्तियों की, अपने दुख, कष्टों और पीड़ाओं की कहानियाँ उन्हें सुनाते। उत्तर में वह नमनीय और सजीव चोगा प्रत्येक व्यक्ति की ओर अलग-अलग फैल जाता और ज्यों ही वे उसे छूते त्यों ही आश्वस्त और निरोग हो जाते और फिर अधिक सबल और प्रसन्न होकर अपने शरीर में वापस चले जाते। प्राय: जब श्रीमाँ इस विजन को देख रहीं होती तो वे अपने बांयी ओर एक वृद्ध पुरूष को देखतीं जो निश्चल और नीरव दिखाई देते और उनकी ओर स्नेह दृष्टि से ताका करते थे। श्रीमाँ ने बहुत पीछे जाना कि वह वृद्ध व्यक्ति दु:ख-पुरूष (Man of sorrow) की साकार मूर्ति थे। वास्तव में ये अनुभव श्रीमाँ के परवर्ती जीवनकाल का सजीव चित्रण है। सुनहरे चोगे का फैलना इस भागवत शक्ति की वह अर्थपूर्ण क्रिया है जो मानव जाति की सहायता के लिए नीचे की ओर झुकती है।

श्रीमाँ ने उस चोगे को पहना था और शायद इसी छोटी सी उम्र में उनकी अदृश्य सत्ता ने मानव जाति के दु:खों और उनकी आन्तरिक अक्षमताओं का उत्तरदायित्व उठाने का निर्णय ले लिया था।

श्रीमाँ जन्म से फ्रेंच थीं भारत उनकी चयन भूमि थी [By birth I am French, By choice I am India] सन् 1914 में 29 मार्च को उन्होंने प्रथम बार श्रीअरविन्द के दर्शन के दर्शन किये थे। अपने पति पॉलरिशर के साथ वे पाण्डिचेरी आईं थीं। प्रथम दर्शन में ही श्रीमाँ ने पहचान लिया कि ये ही वे युग पुरूष हैं जिन्हें अपने विज़न (अन्तदर्शन) में देखा करती थीं और कृष्ण संबोधित करती थीं। वस्तुत: यह मिलन 'ब्रह्म पुरूष' एवं 'पराप्रकृति' के मूल तत्वों को देह में साक्षात होकर एक अभूतपूर्व मिलन था जो एक ही युगकाल में, एक ही प्रयोजन एवं एक ही लक्ष्य की संसिद्धि हेतु पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। यह विधाता-रचित एक अपूर्व संयोग था:-

"To raise the world to God in deathless light

To bring down the God in the world, we came

To change the earthly life in life Divine"

[इस विश्व को प्रभु तक अमर रोशनी में उठाने के लिए, प्रभु को इस विश्व में नीचे उतार लाने के लिए, हम आये,परिवर्तित कर देने के लिए पृथ्वी का जीवन दिव्य जीव में।]

इस असाध्य कार्य को साधित करने के लिए श्रीअरविन्द ने अपने मन, प्राण, देह के हर स्तर पर, हर धरातल पर, अचेतन व निष्चेतन जगत के प्रत्यक्ष और परोक्ष, जटिल और विषम हर पहलू पर अपनी वेधक दृष्टि डाली, उनमें कार्यरत ईश्निदक एवं दुर्भावनापूर्ण वृत्तियों के कारणों की खोज की, उस पर पड़े काले आवरण उठाए और उस विशाल कार्य अर्थात् जगजीवन के परिवर्तन एवं रूपान्तर हेतु अनेक विधियों, प्रणालियों प्रयोगों एवं युक्तियों का सूत्रपात किया जिससे उसमें निहित, निद्रित ईश्वर [Sleeping God] को जगाया जा सके क्योंकि उस ईश्वर का वास सर्वत्र है:- 'ईषावास्यम सर्वम'।

श्रीअरविन्द ने समस्त सृष्टि जीवन के स्थूल-सूक्ष्म सभी पदार्थों एवं उसके कार्य व्यापारों में उस 'परम तत्व' को सक्रिय एवं साक्षात कर सकने के अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया, उन्हें शब्द रूप देकर लेखन में अभिव्यक्त किया उन्हें शाश्वत स्थायित्व प्रदान किया। और श्रीमाँ ने श्रीअरविन्द की प्रत्येक खोज, प्रत्येक अनुभूति एवं संसिधि को उनके अनुयायी साधकों के प्रत्येक कर्म, आचार-विचार, व्यवहार और वाणी में सतत क्रियाशील बनाने के अत्यन्त दुश्कर कार्यों को साधित किया, उसमें उत्तरोत्तर विकास की अनेक सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला और जीवन की निम्न एवं निरर्थक गतिविधियों से छुटकारा पाने के अति महत्वपूर्ण विषय को समझने एवं स्वीकारने की अनवरत प्रेरणा दी। श्रीमाँ ने लिखा है-

'उनके बिना मेरा कोई अस्तित्व नहींमेरे बिना वे अनभिव्यक्त हैं'

[Without Him I exist not Without me He is unamanifest]

पुरूष और प्रकृति के स्वभाव के स्वरूप व अभिप्राय को प्रकट कर देने वाली ये दो लघु पंक्तियाँ स्मरण रखने योग्य हैं। पुरूष और प्रकृति का यह कार्य व्यापार सामान्य जीव जगत में भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है किन्तु वह अज्ञानमय उत्तेजक इन्द्रियों की खिलवाड़ का स्थल है।

एक ही युग, एक ही संकल्प, एक ही सदी और एक ही प्रयोजन हेतु श्रीमाँ और श्रीअरविन्द ने इस भागवत श्रम को अनन्त प्रयासों, अनन्त संघर्षों एवं प्रयोगों के द्वारा साधित किया है। उन दोनों ने अपने वर्तमान जीवन का प्रत्येक मुहूर्त, प्रत्येक क्षण इसी की उपलब्धि के लिए जिया, उन्होंने सर्वोत्कृष्ट सत्य (Supreme Truth) पर पड़े आवरण हटा दिए जिससे सत्यान्वेषी जिज्ञासु परमसत्य के दर्शन कर सके:-

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि 'तेरे-मेरे अनेक जन्म बीत चुके हैं, तू उन्हें नहीं जानता, मैं जानता हूँ' और श्रीमाँ भी अपने शाश्वत स्वरूप का प्रसंगवश उल्लेख करते हुए बताती हैं:-

"पृथ्वी की शुरू शुरूआत से ही जहाँ कहीं और जब कहीं चेतना की एक किरण की भी अभिव्यक्ति की संभावना थी, मैं वहाँ विद्यमान थी।"

"यह जो तुम्हारे सामने खड़ा देहरूपी अस्तित्व तुमसे कुछ कह रहा है भगवान का एक बहुत विनम्र सेवक है। हर काल में पृथ्वी की शुरूआत से ही यह अपने स्वामी की ओर से तुम्हें कुछ बतातायह अपने प्रभु के शब्द तुम तक पहुँचाता रहेगा"

"अपने समस्त जीवन में जाने-अनजाने, मैं वही रही हूँ जो उस प्रभु ने मुझे बनाना चाहा, मैंने वही किया जो उस प्रभु ने मुझसे कराना चाहा।"

24 अप्रैल 1920 को श्रीमाँ सदा सर्वदा के लिए अपना देश-परिवार छोड़कर पाण्डिचेरी आ गई थीं। शब्दों की सार्थकता में यह आगमन उनके जीवनक्रम का एक मोड़, एक निर्णय बनकर व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु विधि के आलेख में यह ऐसा महत शब्दातीत निर्णय है जिसकी उपलब्धियों और परिणामों की गणना किसी काव्य, साहित्य, इतिहास अथवा शास्त्र में सम्पूर्णत: वर्णित नहीं की जा सकती, केवल उनके अनेकानेक शरणागत बालकों के हृदय-स्पन्दन ही इस महान अनुभूति को दोहरा सकते हैं तथा अवचेतन एवं जड़ भौतिक स्तर पर अनेक अपरोक्ष दिव्य स्थापनाएँ उनके कार्य के भावी उद्घाटन का स्वरूप बनेंगी।

फ्रांस छोड़कर श्रीमाँ ने अपने स्वजन अपना भौतिक परिवेश ही नहीं छोड़ा था वरन् श्रीअरविन्द के चरणों में अपना पूर्व अर्जित आध्यात्मिक ज्ञान अपनी अनुभूतियाँ एवं उपलब्धियाँ भी उनके चरणों में समर्पित कर दी थीं, उन्होंने स्वयं को एक कोरा पृष्ठ बन जाने दिया जिस पर नई लेखनी से नये ज्ञान की सूर्यकिरणें अपने शब्द अंकित कर सकें। वे अपनी डायरी में लिखती हैं-

"मुझे लगता है कि मैं एक नये जीवन में जन्म लेने जा रही हूँ मानों मुझसे मेरा भूतकाल छीन लिया गया है, मेरी भूल-भ्रान्तियों के साथ मेरी उपलब्धियाँभी छीन ली गई हैं। मैं जानती हूँ कि अब मुझे अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर देना चाहिए और नितान्त एक कोरे पृष्ठ जैसा बन जाना चाहिएजिस पर हे नाथ, एक मात्र तेरी ही इच्छा अंकित हो सके और वह सब प्रकार की विकृतियों से सुरक्षित रहे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमाँ का अन्तिम रूप से भारत आ जाने और श्रीअरविन्द के योग की पूर्णता के लिए स्वयं को समर्पित कर देने के लिए यह निर्णय श्रीमाँ के जीवन का मात्र एक पृष्ठ नहीं है, मात्र एक पहलू नहीं है वरन् 'भागवत योजना' में अन्तर्निहित एक निश्चत क्रिया है।

इस प्रकार श्रीमाँ के अनेकानेक वक्तव्य उनकी गहन अंतर्दृष्टि एवं मानव प्रकृति के विभिन्न पक्षों पर सीधी रौशनी डालते हैं तथा उसकी समस्याओं के एक मात्र (Only Solutions) समाधान प्रस्तुत करते हैं, उनके शब्दों में एक चुनौती है, एक आहवान है, एक आश्वासन है और जीवन के उत्थान में बाधक तत्वों पर अन्तिम विजय की दुन्दुभि है।

अस्तु।

सन् 1926 में श्रीअरविन्द ने अपने कार्य की सम्पूर्ण सिद्धि हेतु एकान्तवास ले लिया था और इधर उनके शिष्यों, अनुयायिओं एवं आगन्तुकों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। श्रीमाँ के ही निर्देशन नेतृत्व में आश्रम का सम्पूर्ण जीवन सुगठित व सुव्यवस्थित हो रहा था। अपने प्रिय साधक, साधिकाओं, बालक, बालिकाओं के मानसिक, प्राणिक और हार्दिक अवरोधों को दूर करती श्रीमाँ, उनके अबोध एवं हठीले प्रश्नों का प्रयुत्तर देतीं तथा समाधान करतीं श्रीमाँ, कहीं अपनी योगदृष्टि, कहीं अपने स्पर्श, कहीं मधुर मुस्कान से कठिन पथ को सहज और प्रशस्त करतीं श्रीमाँ, नये-नये विभाग, नई-नई कक्षाएँ शुरू करतीं श्रीमाँ, उनमें कार्य करते साधकों को सही दृष्टिकोण, सही ढ़ंग, पद्यति एवं विधाएँ सिखातीं श्रीमाँ, जैसे देह की आग न हो, विद्युत की लहरें हों, सूर्य की किरणें हों। आश्रम का सम्पूर्ण गठन श्रीमाँ के निर्देशन, संचालन एवं उनकी ज्योतिर्मय चेतना की कार्य क्षमता से निर्मित हो रहा था।

सन् 1926 से लेकर सन् 1973 तक अपने प्रारम्भिक जीवन से लेकर आखिरी क्षणों तक श्रीमाँ ने हम सब अपने बालकों के लिए, अपनी सन्तानों के लिए अपना क्षण-क्षण उत्सर्ग कर दिया था और आज भी उनकी अदेही सत्ता हमें अपनी वात्सल्यमयि बाहों में शरण दिये हुए है। सृष्टि के लिए मृत्यु की यह प्रक्रिया अनिवार्य हो गयी थी।

उनके शरीर ने अवश्य हमसे यह दूरी स्वीकार की है परन्तु उनका सर्वजयी प्रेम, शाश्वत चेतना एवं वात्सल्य हमारे लिए सदा उपलब्ध रहेंगे। श्रीमाँ ने हमें नहीं छोड़ा सिर्फ अपना शरीर छोड़ा है हमारी नित, उनसे नित यही प्रार्थना है कि वे हमें अपने योग्य बनाएँ हम उनकी अनुपम वरदवाणी की सारगर्मित शिक्षा को ग्रहण करने योग्य बनें और उनकी शाश्वत उपस्थिति के विश्वास को दृढ़तर बनाऐं:-

Because thou art, the soul draw near the God
Because thou art, Love grow inspite of the hate
And knowledge walks unslain in the pit of Night

[क्योंकि तुम हो आत्मायें, प्रभु के समीप खींचती हैं, क्योंकि तुम हो घृणा के बावजूद प्रेम पनपता है, क्योंकि तुम हो ज्ञान महानिशा के खण्डकड़ी में अक्षत घूमता है।]

उनके देह त्याग पर नलिनी दा ने कहा था-

"श्रीमाँ का यह शरीर पुरानी सृष्टि एवं उसके तत्वों से बना था। उसने अपना कार्य पूरी तरह निभाया, आगामी नई सृष्टि के लिए मृत्यु की यह प्रक्रिया जरूरी थी। वह नए दिव्य शरीर की पीढ़ी का बनने के लिए था।"

अपने बारे में पूछे जाने पर श्रीमाँ ने कहा था-

"मेरे इस भौतिक जीवन और अस्तित्व के विषय में प्रश्न मत करो, यह अपने में कोई बहुत ध्यान देने योग्य बात नहीं है। इस पूरे जीवन में जाने-अनजाने मैं वही रही हूँ जो उस प्रभु ने मुझे बनाना चाहा, मैंने वही किया जो उसने मुझसे कराना चाहा। बस, यही बात एक मात्र महत्व रखती है।"

इस प्रकार श्रीमाँ के अनेकानेक वक्तव्य भगवान के प्रति उनके असीम प्रेम एवं अटल विश्वास के द्योतक हैं। उनके शब्दों में समग्र समर्पण की भावना निहित है।

सन् 1926 में श्रीअरविन्द ने अपने कार्य की सिद्धि के लिए पूर्ण एकान्तवास ले लिया था और इधर उनके शिष्यों, अनुयायियों एवं आगन्तुकों की संख्या बढ़ती जा रही थी। अत: श्रीमाँ के ही निर्देशन एवं नेतृत्व में आश्रम का जीवन सुगठित एवं सुव्यस्थित हो रहा था। अपने प्रिय साधकों, बालकों एवं अनुगतों, उनके मानसिक, प्राणिक तथा अवरोधों को दूर करती श्रीमाँ, कहीं अपनी योगदृष्टि से, कहीं अपने स्पर्श से, कहीं मधुर मुस्कान से उनके कठिन पथ को सहज एवं प्रशस्त करती श्रीमाँ, कभी उन्हें कार्य के प्रति सही ढ़ंग, सही दृष्टिकोण एवं सही चेतना सिखाती श्रीमाँ, जैसे देह के अंग न हों, विद्युत की लहरें हों, सूर्य की किरणें हों/आश्रम का पूर्ण गठन निर्देशन, संचालन एवं उनकी भागवत चेतना की क्षमता से निर्मित हो रहा था।

सन् 1926 से लेकर अपने जीवन के आखिरी क्षणों तक अपने बालकों के लिए श्रीमाँ ने अपना प्रत्येक क्षण उत्सर्ग कर दिया और शाश्वत काम तक उनकी अदेही सत्ता उन्हें अपनी वात्सल्यमयी बाहों में शरण देती रहेंगी।

17 नवम्बर सन् 1973 को सायं 7 बजकर 25 मिनट पर अनन्त: श्रीमाँ ने अपना देह त्याग दिया। आगामी नई सृष्टि के लिए मृत्यु की यह प्रक्रिया अनिवार्य थी। नालिनी दा ने उनके व्याकुल बालकों को सान्त्वना देते हुए कहा था, "श्रीमाँ का यह शरीर पुरानी सृष्टि के तत्वों से बना था वह नये दिव्य शरीर की पीठिका के लिए बना था, उसने अपना कार्य पूरी तरह से निभाया। अब वे नये शरीर में पुन: हमारे पास आयेंगी।" श्रीमाँ का सर्वजयी प्रेम एवं वात्सल्य हमेशा हमें उपलब्ध रहेंगे। हमारी नित्य उनसे यही प्रार्थना है व कि हमें अपने योग्य बनाएँ, और हम उनकी अनुपम वरदवाणी की सारगर्भित शिक्षा को ग्रहण करने में सक्षम हों, और उनकी चिरंतन 'उपस्थिति' पर अपना विश्वास बनाए रखें और सर्वदा स्मरण करते रहें कि:

"Because thou art, the soul draw near the God
Because thou art, Love grow inspite of the hate
And knowledge walks unslain in the pit of Night"

[क्योंकि तुम हो, आत्मायें प्रभु की ओर खिंचती हैं क्योंकि तुम हो, घृणा के बावजूद प्रेम पनपता है और ज्ञान महानिशा के खन्दक में अक्षय घूमता है]

सर्वोच्च उद्देश्य

कुछ लोगों का उद्देश्य होता है धन कमाना, कुछ का रोग का इलाज ढूँढ़ना। स्पष्ट ही धन कमाना जितना स्वार्थपूर्ण और निम्न ढंग का है, उतना रोग का इलाज ढूँढ़ना नहीं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका उद्देश्य होता है सुखमय और शान्त जीवन यापन करना, परिवार हो, बच्चे हों, संसार में अच्छे-से-अच्छे सुख की प्राप्ति हो। यह भी एक काफी निम्न प्रकार का उद्देश्य है, कम-से-कम अति साधारण तो है ही।

कुछ लोग पूरे समाज की भलाई चाहते हैं, कुछ नये आविष्कार करने के लिए अनुसन्धान करते हैं। ऐसा उद्देश्य पहले वाले से उच्च है। निष्काम उद्देश्य का अर्थ है ऐसा उद्देश्य जिसमें व्यक्ति अपने तुच्छ लाभ के लिए या अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं, वरन् एकमात्र दूसरों को सहायता पहुँचाने के लिए कार्य करता है। स्वभावत: ही उच्चतम उद्देश्य है भगवान के साथ संयुक्त होना और उनके कार्य को पूर्ण करना, किन्तु यह बात सीढ़ी के सबसे ऊपर वाले डण्डे पर ही पहुँचकर पूरी होती है।

श्रीमाँ
कर्मधारा-1973

शरीरधारी आत्मा पुराने शरीर को त्याग देती है और नए शरीर धारण कर लेती है जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को नए के लिए बदलता है। न शस्त्र उसे काट सकता है, न आग जला सकती है, न जल उसे भिगा सकता है, न वायु सुखा सकती है। यह अघुलनशील है, इसे न जलाया नहीं जा सकता है, न तो भिगोया जा सकता है और न ही सुखाया जा सकता है। नित्य स्थिर, अचल, सर्वव्यापी, यह सदा-सर्वदा है।

- श्रीअरविन्द

गतिविधियाँ

5 नवंबर (दीपावली)

सिद्धि दिवस

24 नवंबर

महासमाधि दिवस

5 दिसम्बर

क्रिसमस

25 दिसंबर